उपोद्घात ।

आजकल पाश्चात्य वायुके प्रवाहसे जिस तरह सनातन धर्मियोंमेंसे कितनेही आर्यसमाजी होकर प्राचीन रीति नीतियोंकी घोर निंदा करते हुये धर्मको रसातलमें पहुंचानेकी चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार सांसारिक सुखको लक्ष्यमें रखकर निवृत्तिप्रधान जैन समाजमें भी ऐसे कुछ लोग दीखने लग गये हैं जो अपनी कुतर्कणाओंसे धर्मकी रक्षा करनेवाली जातियोंको तोड़ मरोड़कर लीपापोती व सबको एकमेक गड्डमड्ड करना चाहते हैं। उनकी कुतर्कणाओंमें लोग न फंसे और वस्तुज्ञान वास्तवरूपमें करें इसी हेतुसे हमने श्रीमान् धर्मधीर पंडित श्रीलालजी पाटनीसे प्रार्थनाकी कि आप विजातीय विवाह खंडनके ऊपर एक विस्तृत पुस्तक लिखें, जिसे उक्त पंडितजीने सहर्ष स्वीकार कर यह अनमोल पुस्तक तैयारकी है। इसके उपलक्ष्यमें हम पंडितजीकी सेवामें कोटिशः धन्यवाद पुष्पांजलि समर्पित करते हुये आगे भी इसीप्रकार सदैव धर्मरक्षार्थ कटिबद्ध रहनेकी प्रार्थना करते हैं।

अन्य विद्वानोंको भी चाहिये कि धर्म रक्षार्थ ऐसे ऐसे निबंध लिखकर हमारे पास भेजें जिन्हें प्रकाशित किया जाकर इस अधर्मवायुसे लोगोंको बचाया जाय एवं सभी लोगोंसे प्रार्थना है कि इस उत्तम, मनोहर और धर्मरक्षक निबंधको पढकर वास्तविक लाभ उठावें।

द्वितीय श्रावण शुक्ला ३
वीर संवत् २४५४
विक्रम संवत् १९८५

इन्द्रलाल शास्त्री
मंत्री, भा० दिगंबर जैन
शास्त्रि-परिषद्
कार्यालय—जयपुर

* श्री वीतरागाय नम *

विजातीय-विवाह आगम और युक्ति दोनोंसे विरुद्ध है।

पाठक-वर्ग! आज आर्य-समाजियोंकी संगतिमें पड़कर अथवा कांग्रेस कमेटीके स्वराज्य प्रलोभनमें पड़कर हमारे कुछ मनचले जैनी भाईभी जैनियोंकी समस्त जातियोंको एकमेककर धर्मकी वास्तविक श्रेणीको नष्ट-भ्रष्ट कर उन्नतिका स्वप्न देख रहे हैं। इंगलिश-सभ्यता-ने तो इसमें और भी धमाचौकड़ी मचाडाली है, इस विषयमें कुछ विद्वान् नामधारकोंका मस्तक भी चक्करमे पड़ गया है। कुछ विद्वान् भी विना आगापीछा विचारे विजातीय-विवाहको आगमानुकूल कह गये हैं; परन्तु समझदार धार्मिक मण्डलीका श्रद्धान, इस तू तू में मैंसे और भी निर्मल हो रहा है, इसलिये आज हम इस विषयको आगम और युक्ति इन दोनोंसे स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं, आशा है कि पाठक शान्तिसे विचारेंगे।

'जाति' शब्द और 'जन्म' शब्द दोनों ही "जनी प्रादुर्भावे" धातु-के प्रयोग हैं और इन दोनोंका वैसा ही सम्बन्ध है जैसा किसी राजाका राज्यसे हो, क्योंकि "राजृ दीप्तौ" धातुसे ही राजा और राज्य ये दो शब्द बनते हैं। बस; इससे यह जानलेना चाहिये कि जन्मसे ही जातिका सम्बंध है, दूसरी किसी बातसे नहीं है। इस विषयका हम मनुष्य मात्रमें ही अन्वय व्यतिरेक देखते हैं यह

नहीं; किन्तु जहां २ पदार्थकी नवीन पर्याय प्रकट होगी वहां वहां इस अटल अचल नियमका पालन नियमसे आवश्यकीय है। दृष्टान्तके लिये देवगति नामकर्मके उदयसे प्राप्त भई जो देवपर्याय है वह भी अपने भवनवासी, व्यन्तर आदि जातियोंके भेदोंको धारणकर रही है और वह भवनवासी भी अपने अपने असुरकुमार आदि भेदोंको धारण किये हुए हैं। इसीप्रकार व्यंतर भी अपनी २ किन्नर किंपुरुष आदि जातियोंको धारण किये हुये अनेक प्रकार हैं तथैव ज्योतिष्क देव भी सूर्यचन्द्रादि जातियोंके भेदोंसे अनेक प्रकार हैं। इसीप्रकार कल्पवासी भी अपने अपने इन्द्रकी जातियोंसे अनेक प्रकार हैं। यद्यपि वहां रजोवीर्यादिकका सम्बंध नहीं है तो भी उपपाद-शय्यासे गृहीत नोकर्मवर्गणासे उनके शरीरमें अन्तर है, भावोंमें अन्तर है। इस अंतरमें कारण है छह खरब प्रकारका कुल (जाति) भेद। देखो प्रमाणमें—

छपंचाधियवीसं बारस कुलकोडिसदसहस्साइं।
सुरणेरइयणराणं जहाकमं होंति णेयाणि॥

[गोमट्टसार जीवकांड गाथा ११६]

अर्थः—देवोंके छह खरब कुल हैं, नारकियोंके चौस खरब, मनुष्योंके बारह खरब कुल हैं।

यही कुल (जाति) भेद—समान आयु, शरीर, स्थानादिकोंके होते भी कुल भेद है। इसीप्रकार मनुष्योंमें भी—भारतके मनुष्योंकी एकसी देह, एकसा-खान-पीन आदिके समान होते एक समझना भूल है। मनुष्योंके कुलभेद ही भेदका कारण है।

जैनियोंकी चौरासी जाति देख ही मनुष्योंके छक्के छूटजाते हैं, किन्तु मनुष्य-लोकके निवासी मनुष्योंके बारह खरब कुल हैं।

पाठक गण! लेखमें कहीं जाति शब्द आवै या वंश या कुल शब्द आवे उसे एकही समझे, क्योंकि जाति, वंश, कुल ये शब्द सब एक ही पर्यायवाची हैं। देखो प्रमाणमें—

"सन्ततिगोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ, वंशोन्वयवायसन्तानः"

[अमरकोष काण्ड २, ब्रह्मवर्ग श्लोक १]

अर्थ—सन्तति, गोत्र, जनन, कुल, अभिजन, वंश, अन्ववाय, सन्तान ये कुलके वाचक शब्द हैं।

ठीक, यही व्यवस्था नरकोंमें नारकियोंकी है। नरकगति नामकर्मके उदयसे प्राप्त हुई जो नरकपर्याय है, वह भी अपने २ नरकके बिलमें उस उसरूप शरीर प्रमाणके एवं आयु, भाव आदिकोंकी समानता रखनेको कारण होगी। ऐसा नहीं हो सकता कि पहले नरकमें उपजे नारकीका शरीर और भाव दूसरे नरकके नारकीकासा हो। यही भेद-भाव जाति-भेदक होता है। उक्त कुल भेद ही इसमें कारण हैं।

ठीक, यही व्यवस्था तिर्यंच योनिके उन भेदोंमें है जो रजोवीर्यसे सम्बंध रखनेवाले तिर्यंच हैं। जैसे जिस जातिकी पृथ्वी जिस देशमें होती है उस जातिकी पृथ्वी उसी देशमें होगी; अन्यमें नहीं, इसीप्रकार चावल अनेक जातिके होते हुए भी जिस जातिके चावलसे जो चाँवल उत्पन्न होता है उस जातिके चाँवलमें जो गुण कर्म है वह उसी में है अन्यमें नहीं, न उस जातिका चाँवल

अन्य जातिके चाँवलसे उत्पन्न हो सकता है। ठीक; इसी व्यवस्था से आम आदि वनस्पतियाँ भी इस अनादिधाराको अविच्छिन्न-रूपसे बराबर धारण करती आ रही हैं और करेंगी।

यह नहीं हो सकता कि लँगडा आमके बीजसे उपजा आम देशी आम हो जावे और लंगड़ा आम न हो। यहां किसी कविकी उक्तिका भी स्मरण होता है कि "जैसा बीज होय तरु तैसो, तरु सारू फल थाई, अब तू समझ समझ रे भाई" इस संततिक्रमका नाश न हुआ है और न होगा। यही व्यवस्था घोड़े आदि पशुओं-की जातियोंमें भी निर्वाध है। अरबी घोड़ा घोड़ीकी सन्तान जिन गुण कर्मादिकोंसे सम्पन्न होगी वह गुण अन्य जातिके उपजे घोड़ा घोड़ियोंमें नहीं आसकते; भिन्न जातिकी संतान घोड़ा न होकर खिच्चर हो जाता है। क्या ऐसी मोटी बातें भी उन लोगोंके दृष्टि-पथमें नहीं आई हैं? क्या प्राकृतिक नियममें भी किसी आगम या युक्तिके द्वारा अन्य स्वरूप हो जाना है? हमतो यह बात नियमसे देख रहे हैं कि सन्तानक्रम अनादि अनन्त है, यह नियम सर्व पदार्थोंको नहीं छोड़ता। यहां कोई यह शङ्का करे कि जाति शब्दका अर्थ "जातिः सामान्यजन्मनोः" इस अमरकोषके प्रमाणसे जाति और सामान्यका है तो केवल एक जाति शब्दका जन्म अर्थ मानना ठीक न होगा? तो इसका यही उत्तर है कि, जहां विजाति विवाहका संबंध है वहां जाति शब्दका जन्म ही अर्थ हो सकता है क्योंकि विवाहका फल पुत्रादि जन्म है। फिर जाति शब्दका अर्थ प्रकर्णसे जन्म ही हो सकेगा। जहां क्षत्रियत्वादि जाति काल्पनि-

कीयता आदि पाठ है वहां स्पष्टरूपसे जाति शब्दका अर्थ सामान्य है, जिसका बोधक क्षत्रिय शब्दके अगाड़ी 'त्व' पड़ा है जो 'त्व' प्रत्यय सामान्यका बोधक है । अर्थात् क्षत्रिय सामान्यधर्म जो क्षत्रियोंका धर्म है। आदि शब्दसे वैश्यत्व वैश्योंका समान्य धर्म है जिसकी पुष्टिमें वही वाक्य है कि जिन्हें आदिब्रह्माने क्षत्रियत्व-धर्म अर्थात् क्षत्रियोंकी आजीविका करके कुटुम्ब पालन करना, वैश्योंकी आजीविका करके कुटुम्ब पालन करना आदि सिखाया। यहां व्यापार शिक्षासे सम्बन्ध है; किन्तु जिन पुरुषोंका जन्म जिस जातिमें हुआ है उससे क्षत्रियत्वका (क्षत्रिय व्यापारका) कुछ सम्बन्ध नहीं है। यदि कोई ऐसा मानें कि जाति शब्दका अर्थ यदि वंशसे है तो भगवानने ही वंशोकी रचना की यह सर्वथा असत्य है।

भगवान् तो स्वयं इक्ष्वाकुवंश और काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुए हैं, जिन अनादि अनंत कुलधाराओंको कुलकरोंने प्रगट किया है।

पाठकगण! इतना विशेष ध्यानदें कि भोगभूमिमें मनुष्योंके जो ऊंचगोत्र कहा है वह भोगभूमि वही है जो नियमसे भोगभूमि रहती है। हैमवत, हरि, रम्यक, हैरण्यवत, देवकुरु, उत्तरकुरु इनमे सदा सन्तानक्रमसे जीव ऊंचगोत्री होते हैं; जभी भोगभूमियां गोमट्टसारके सिद्धान्तसे ऊंचगोत्री मानी गई हैं, परन्तु जहां कालका परिवर्त्तन होता है; ऐसे भरत, ऐरावतको भोगभूमि नहीं कहा, ये कर्मभूमि ही हैं। जिसके प्रमाणमें "भरतऐरावतविदेहाः

कर्म भूमयः” ये तत्त्वार्थसूत्रका वाक्य है। इन क्षेत्रोंमें जो जीव पहले दूसरे तीसरे कालके अन्तमें हैं वह ऊंचगोत्री व नीचगोत्री दोनों हैं जिनके कुलोंको कुलकर प्रगट करके बताते हैं।

इसीप्रकार उत्सर्पिणीके प्रथमकालमें (दुखमादुखमामें) सब नीचगोत्री होते हैं ऐसा मानना भूल है। जो प्रलयकालसे बचे जिनको देवादिकोंने रक्षा करके बचाया वही वहां आकर बसे वे सब नीचगोत्री थे ऐसा नहीं हो सकता, किन्तु जो ऊंच-गोत्रकी सन्तानमें थे वे ऊंच थे, जो नीचकेमे थे वे नीच थे। अन्यथा ऐसे नीचोंकी सन्तान प्रतिसन्तानोंमें तीर्थंकरादिक किस प्रकार जन्म लेते?

यहां कोई यह आशङ्का करे कि भोगभूमिमें जीवोंके वंश नहीं थे क्योंकि आदिब्रह्माने वंशोंकी स्थापना की ऐसा हरिवंशपुराण-में कहा है।

पाठकगण! यह बात मिथ्या है। हरिवंशपुराणके आधारसे जो आदिब्रह्मा द्वारा कुलोंकी उत्पत्ति बताई जा रही है, वह नहीं है। देखो प्रमाणमे—

इक्ष्वाकुः प्रथमं प्रधानमुदगादादित्यवंशस्ततः।
तस्मादेव च सोमवंश इतियस्त्वन्येकुरूग्राद्यः॥
पश्चाच्छ्रीवृषभादभूदृषिगणः श्रीवंशउच्चस्तरा-
मित्थं हे नृप खेचरान्वययुतावंशास्तत्रोक्ता मया॥
(हरिवंशपुराण पर्व १३ श्लोक ३३)

[प्रकरण—गणधर स्वामीका श्रेणिकसे वार्त्तालाप]

अर्थः—हे श्रेणिक ! सबसे पहले इक्ष्वाकुवंश मुख्यताको प्राप्त हुआ, उसके अनन्तर सूर्यवंश, उसके अनन्तर सोमवंश, उसके अनन्तर कुरुवंश, उग्रवंश आदिक और आदिब्रह्मासे मुनिमार्ग-प्रवर्त्ता, श्रीवंशकी उन्नति हुई। इसप्रकार विद्याधरोंके वंशोंकर सहित जो और कुल हैं उनको हम तेरेसे पहले कह चुके हैं।

पाठकगण ! इस श्लोकके अर्थपर ध्यान दें कि यहां गणधर स्वामी श्रेणिकको बता रहे हैं कि वंशोंमें वंश सबसे पहिले इक्ष्वाकु मुख्य हुआ क्योंकि उसमें आदिब्रह्माने जन्म लिया, जिस आदि-ब्रह्मासे मुनिमार्ग प्रवर्त्ता। उसके अनन्तर सूर्यवंश क्योंकि पहले दूसरे तीसरे तीर्थंकर तो इक्ष्वाकुवंशमें ही हुए और चौथे तीर्थंकर सूर्यवंशमें हुये सो जो कोई मुख्य पुरुष होय ताकर कुल प्रधान-पनेको प्राप्त होय।

इसीप्रकार जिस जिस कुलमें तीर्थंकर हुए वह वह कुल प्रधान होता हुआ। इस श्लोकके अर्थमें यह बात कहीं भी नहीं है कि आदिब्रह्माने कुलोंकी रचना की और उसका ये उद्देश्य था। इस श्लोकके अर्थसे तो कुलोंकी प्रकटना भगवानके जन्मसे पूर्व हो गई यही सूचित होता है।

इसका प्रयोजन यह नहीं है कि भोगभूमियोंमें कोई जाति (वंश) ही नहीं थी, यदि नहीं थी तो कुलकर किसे प्रकट करते, किसे ऊंचगोत्री बनाते और किसे नीचगोत्री। जब सबकी एकसी दशा, एकशा शरीर, फिर भला किसने कौनसा पाप किया जो

कुलकरोंने ऊंचगोत्रियोको विनाही कोई नीचकाम किये नीचगोत्री बता दिया। भला जैनधर्मका जो सिद्धान्त ऊंचगोत्रीकी सन्तानको ऊंचगोत्री मानना, नीचगोत्रकी सन्तानको नीचगोत्री मानना यह सर्वथा ही नष्ट करके वंश व जातिको नवीन बनाना अथवा भोग-भूमियोंको ऊंचगोत्री मानकर भगवान्के द्वारा उन्हें नीचगोत्री किया हुआ बताना भारी भूल नहीं तो क्या है ? ऊंचगोत्र नीच-गोत्र दोनों ही अनादि अनंत हैं और उसकी धारा अविच्छिन्नरूपसे चली आ रही है और चली जायगी। आज इस विकराल पंचम-कालमे और फिर भी वह सामान्य नहीं किन्तु हुण्डावसर्पिणीके पंचमकालमें जो जो जातियां, विजातिविवाह संबन्धसे बढ़ती २ जावेंगी उन सबका प्रलयकालमें अन्त हो जायगा, क्योंकि पाप-का फल प्रलय है और उसमे वही बचेंगे जो सन्तानक्रमसे शुद्ध हैं। वही देवादिकोंसे अन्य स्थानोपर लेजाये जायंगे और फिर इसी देशमें लाये जायंगे अथवा और भी जोड़ा उन स्थानोंसे लाये जायंगे जहां ऊंच गोत्रियोकी संतानोंका अभाव नहीं होता ऐसे विजयार्द्ध आदिकोंसे ऐसा जानना।

यहां कोई यह शंका करे कि जातिका जन्मसे संबन्ध नहीं है क्योंकि दीक्षान्वय क्रियामें "दधतो गोत्रजात्यादि" इस प्रमाणसे जब गोत्र जाति पलटी जाती हैं तो फिर जन्मके साथ जातिका क्या संबन्ध है, तो इसका यही उत्तर है कि प्रथम तो दीक्षान्वय-क्रियामें गोत्रजाति पलटना नहीं कहा क्योंकि ऊंचगोत्रही दीक्षा धारण करेगा फिर वह ऊंचगोत्रकी ही जाति और गोत्र धारण

करेगा नीच गोत्रकी तो कर नहीं सकता और न नीच गोत्री दीक्षा धारण कर सकता है, तो फिर जाति और गोत्र पलटनेसे , क्या लाभ हो सकता है ?

थोड़ी देरके लिये हम यही मानलें कि दीक्षा धारण करते हुए जाति गोत्र बदलना पड़ता हैं तो कौनसा बदला गया ? तो यही कहा जायगा कि जो जन्मसे जाति गोत्र था वह पलटा गया फिर जन्मके साथ जातिगोत्रका संवन्ध रहा या नहीं ? यही वात हम कह रहे हैं कि जन्मसे जाति है और वह व्याकरणसे एक ही धातुके प्रयोग हैं। ठीक आज जिस मनुष्यजाति पर विवाद है या जिस मनुष्यसमुदायको जातिस्वरूप ही माननेमें जिन्हें हिचकिचाहट है आज उन्हें ही आगम व युक्ति द्वारा विचार लेनेकी आवश्यकता हैं। जहां काल सदा एकसा है वहां किसी प्रकारके जाति संवन्धका नाश नहीं होता, न किसी वंश या जातिका विध्वंश ही होता है। इसलिये विदेहकी रचना ही सबसे अधिक उपादेय है, जहां सदा मोक्षमार्ग भव्यजीवोंको पथ-प्रदर्शन करानेमें संकुचित नहीं होता। भरत, ऐरावत क्षेत्रोंमे कालके परिवर्तनसे जो व्यवस्था पलटती रहती है वह भी गोत्रकर्मके ऊंचगोत्र और नीचगोत्र भेदको रखती है या नहीं ? जब कर्मजनित कार्य है और आठ कर्मोंमें एक गोत्रकर्म भी कर्म है, तव वह देहधारी जीवमात्र से पृथक नहीं हो सकता, नियमसे देवोंके ऊंचगोत्रका ही उदय है, नरक और तिर्यंच गतिमें नीचगोत्रका ही उदय है, भोगभूमियोंमें सदा ऊंचगोत्रका ही उदय है । भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें

जो सन्तानक्रमसे ऊंचगोत्रकी संतान है वह ऊंचगोत्री और नीचगोत्रोकी जो संतान है वह नीचगोत्री है, इस संतानक्रमकी धारा सतानोंकी संतानों द्वारा होती है और तबही संतानक्रम रह सकता है जब उनकी संतानोंकी संतान बराबर चली जाय। पहले कालका जो भोगभूमियां जीव था उसकी संतान प्रतिसंतान बरा· बर वही चली आई जो जिस जातिकी संतान प्रतिसंतान थी, क्योंकि कोई व्यभिचार सेवन था नहीं, जिस जुगलियाके अन्त-कालमें जो जुगलिया हुवा, उसके फिर जो जुगलिया हुआ वह फिर जुगलिया उत्पन्न करके आप स्वर्गवासी हुवा, इसप्रकार पहला, दूसरा, तीसराकाल पूर्ण हुआ। कुछ थोडा तीसराकाल बाकी रहा, तब कुलकर उत्पन्न होने लगे। उन कुलकरोंने अवधि-ज्ञानादिकसे जो जो भोगभूमियां जिस जिस जातिके थे उन उनके वह ही·कुल नियत किये। प्रमाण देखिये—

"इमानि योगानाध्यायप्रजानामित्युपादिशन्।
केचिज्जातिस्मरोभूत्वा केचिच्चावधिलोचनाः॥
प्रजानां जीवनोपायमननान्मनवोमताः।
आर्याणां कुलसंस्त्याय कृते कुलकरा इमे॥
कुलानां धारणा देते मता· कुलधरा इति।
युगादिपुरुषाः प्रोक्ताः युगादौ प्रभविष्णवः॥"

[आदिपुराण पर्व ३ श्लोक २१०।२११।२१२]

अर्थः—इन कुल जाति आदि निर्मापणरूप अपने कार्योंको करके और प्रजाको शिक्षा देते, कितने ही कुलकर तो जातिस्मरण

ज्ञानी हुए और कितने ही अवधिज्ञानी हुए। इन कुलकरोंने प्रजाको जीवनका उपाय बताया इसलिये ये मनु कहलाये और आर्योंमें कुलोंकी रचना की इसलिये ये कुलकर कहलाये। इन कुलकरोंने स्वयं कुलको धारण किया इसलिये ये युगकी आदिमें कुलधर कहलाये।

पाठक ! विचार करें कि जो कुलकर थे वे अवधिज्ञानी थे, क्षायकसम्यग्दृष्टी थे उन्होंने आर्योंमें कुलकी रचना की, तो क्या जो भोगभूमियां जिस भोगभूमियांके संतानक्रमसे बराबर चला आरहा था उसकी शक्ल सूरत पर तो लिख ही नहीं रहा था कि अमुक भोगभूमियां अमुक जातिका आर्य है, ये सब ज्ञानगम्य हैं और वे थे अवधिज्ञानी, उनके ये सब कार्य कुल रचनात्मक उसही आर्य संतानके लिये हुए जो पूर्व आर्य संतान थे, तबही तो शास्त्र कहता है कि उन कुलकरोंने उन आर्य जीवोंमें कुलोंकी रचना की। जब कुलकी रचनासे आर्य समझे जावें तो ऐसा पाठ होगा कि उनमें कुलकी रचना करके उनको आर्य बनाया परन्तु पाठ है ऐसा कि उन आर्योंमें कुलकी रचना की, तो सब एकसी शक्लवाले, एकसी क्रियावाले उनमें पूर्व हैं कैसे जाना गया कि ये आर्य हैं ? ये अनार्य ? तो इसका यही उत्तर होगा कि "ज्ञान शक्तिसे" तब ही शास्त्रकारोंने उनके विषयमें वर्णन करते हुए क्रमशः उनका ज्ञान (अवधिज्ञान) दिखाकर उनके विषयमें वर्णन किया है।

पाठक, यह भी ध्यानसे विचारें कि उनकी संज्ञा जब कुलक

थी, तब यदि वे स्थापना न करते तो और कर्तव्य कार्य ही क्या था ? जो युगकी आदिमें प्रधान कार्य था वह ही उनने किया, जैसा कि शास्त्रकारोंने लिखा है।

यहाँ कोई यह प्रश्न करे कि कुलकरोंने कुलोंकी रचना नहीं की किंतु कुल नाम इकट्ठे होकर रहनेका है सो कुलकरोंने उस समयके जीवोंको सिखलाया इसलिये कुलकर कहलाये ?

दूसरा प्रश्न यह है कि जब शास्त्रकारोंने चौदहह कुलकरोंके भिन्न भिन्न कार्य बताये हैं, जैसा कि प्रतिश्रुत कुलकरका सूर्य चंद्रमाका भेद समझाना आदि। फिर ये बात कैसे मानी जा सकती है कि कुलकरोंने कुल (वंश) की रचना की। यदि कोई कुलकर वंशकी रचना करता तो उस कुलकरके कार्योंमें यह भी एक कार्य गिनाया जाता ?

तीसरा प्रश्न यह है कि जब कुलोंकी रचना करनेवाला एक ही कुलकर था तो फिर सबही कुलकर क्यों कहलाए ?

पाठक गण! उक्त तीनों प्रश्नोंके यही उत्तर हैं कि, कुल शब्दके अर्थ: "कुल जनपदे गोत्रे सजातीयगणेपि च, भवने च तनौ क्लीवं"

[मेदिनी]

इस कोपके प्रमाणसे जनपद (देश) गोत्र, जाति, भवन (मकान) तनु (शरीर) ये हैं। इनमें मकान तो भोगभूमियोंके पहिले ही थे जो कल्पवृक्षोंसे बनाये गये थे। तनु (शरीर) के बनानेका अर्थ नहीं घटता गोत्र और जातिका जो अर्थ है उसकी रचना करना हम बता ही रहे हैं और जनपद (देश रचना)

आदिब्रह्माकी आज्ञासे इन्द्रादिकोंने की थी फिर कौनसे अर्थसे इकट्ठे रहनेका उपदेशरूपी कार्य कुलकरका बताया जाता है। और फिर हम यह कह सकेंगे कि जब शास्त्रोंमें चौदह कुलकरोंके भिन्न भिन्न कार्य बताये गये हैं, उनमें यह कहां लिखा है कि अमुक कुलकरने इकट्ठे रहनेका उपदेश दिया। थोड़ी देरको यह अर्थ भी मानलिया जाय कि, इकट्ठे रहनेका उपदेश किसी कुलकरने दिया तो इस एक कुलकरके कार्यसे चौदह कुलकर क्यों कहलाये ?

अब दूसरी बातके उत्तर पर पाठक गण ध्यान दें कि जहां शास्त्रोंमें कुलकरोंके भिन्न २ कार्य बताये गये हैं, वह कार्य उन कुलकरोंके समयमें हुए, इसलिये शास्त्रकारोंने उसका वर्णन किया संसारमें सैकड़ों बातोंकी आवश्यकता होती है और उनकी पूर्ति सैकड़ों प्रकारके मनुष्योंसे हुआ करती है फिर जिसपर तो वो तीसरे कालका अन्तिम समय ऐसा समय था जिसमें मनुष्य कल्पवृक्षोंके आधारसे निश्चिन्त थे, परन्तु ज्यों २ कल्पवृक्षोंका सहारा कम होता गया त्यों २ सब प्रकारकी शरीर सम्बन्धी आवश्यकता आती रही और उनका उपाय कुलकर बतलाते रहे इसीलिये शास्त्रकारने कहा है कि 'वह प्रजाको जीवनका उपाय बताते थे, इस कारण वे मनु थे' जिसप्रकार प्रतिश्रुत प्रथम कुलकरने सूर्य चन्द्रका भेद बताया तो इससे जो उस समय ज्योतिराङ्ग कल्पवृक्षोंकी मंद ज्योतिसे जो सूर्य चंद्रादिकोंका प्रकाश होने लगा और उससे जो भय हुआ उसका निवारण किया और प्रजाको शांति-

से जीवनका उपाय बताया अतः मनु कहलाए। इसीप्रकार क्षेमंकर तीसरे कुलकरने सिंहादिक क्रूर जीव होगये उनसे सावधान रहनेकी शिक्षा दी। जब जीवोंको सिंहादिक बाधा देने लगे, तब क्षेमकर कुलकरने जो शिक्षा दी वह जीवनका उपाय था, अतः वो मनु कहलाए। इसीप्रकार चौदहवें कुलकर नाभिरायने खानेके वर्तन बनानेकी विधि बताई इत्यादि कारणोंसे वह प्रजाके जीवनका उपाय बताते थे जिससे वे मनु कहाते थे।

यहां कोई ऐसा समझ बैठे कि वर्तन बनानेकी शिक्षासे वह कुंभार हो गये तो इस समझनेके समान हो, इकट्ठे रहनेके उपदेशसे कुलकर समझना है। वास्तवमें कुलोंकी रचना करनेसे ही वह कुलकर थे। परन्तु इन सब बातोंको देखते हुऐ जब शास्त्रकार इन कुलकरोंकी मनु, कुलकर, कुलधर संज्ञा कह रहा है तो किसी कार्यसे ये नहीं प्रकट होता कि अमुक कारणसे वे कुलकर थे, अमुकसे कुलधर, यदि मानलिया जाय कि इकट्ठे रहनेसे कुलकर कहलाए तो यह भी एक कार्य तब हुआ होगा कि जब पृथक् पृथक् रहनेमें कोई आपत्ति आई होगी तो कहना होगा कि यह भी कार्य जीवनका उपाय बतानेका था, जो मनुका कार्य था परन्तु इसमें कुलकरका क्या कार्य हुआ? और यदि इकट्ठे रहनेके उपदेशसे ही वह कुलकर कहलाए तो भला फिर कुलधर क्यो कहलाए? इस शंकाकी निवृत्ति तो जातिको अनादि अनंत न माननेवालोंसे त्रिकालमें भी नहीं हो सकती। जब तक कि कुलके धारी उन्हे न माना जाय।

तीसरे प्रश्नका उत्तर यह होगा कि जब कुलोंकी रचना करनेवाला एक ही कुलकर था तो सब कुलकर क्यों कहलाए? तो पहले प्रश्नकर्त्ता ही से पूछा जाय कि तुम इकट्ठे रहनेका उपदेश रूप कार्य कुलकरका अर्थ करते हो तो यह भी तो एक ही कुलकरने किया होगा फिर तुम्हारा ही अर्थ सब कुलकरों पर कैसे घटित होता है परन्तु वास्तविक यह बात है कि तीसरे कालका अन्त समय ऐसा समय था जिसमें आगामी काल (चतुर्थकाल) को मोक्षमार्गका साधक बनाना था। मोक्षमार्गका साधक कौनसा काल होता है, जिससे मुनिमार्ग धारण हो सके मुनिमार्ग कब धारण हो सकता है ?

जब दीक्षान्वय क्रियाकी आज्ञानुसार कुल और गोत्र शुद्ध हों। पाठक गण ? अब यहां इस प्रकार मोक्ष-मार्गका अन्वय व्यतिरेकगम्य कारणकार्यभाव घटाते। जहां कुलगोत्र हैं वहीं मोक्षमार्ग है; जैसा कि चतुर्थकालमें और विदेहोंमे। जहां कुल गोत्र नहीं हैं वहां मोक्षमार्ग नहीं।

इसमे शङ्का—देवकुरु, उत्तरकुरु आदि भोग भूमिमें ऊंचगोत्र का उदय है फिर कुल गोत्र क्यों नहीं ?

उत्तर—भोगभूमिमें युगलियाओंकी संतान होनेसे कुल (खण्डेलवाल आदि) की सन्तति बराबर है, परन्तु निजगोत्रमे उपजे युगलियाओसे सन्तान होती है अतः गोत्र (पाटनी आदि) हानि है इसकारण मोक्षमार्ग नहीं है। क्योंकि दीक्षा धारणमें कुल (अग्रवाल आदि) गर्ग आदि दोनोंकी शुद्धिकी

आवश्यकता है। यही बात भरत ऐरावत क्षेत्रोंकी भोगभूमिके समयमें है, वहां भोगभूमिमें संतानकी यात्रा नहीं चलती है अतः कुल-हानि नहीं। परन्तु एक युगलियासे उत्पन्न हुए दो बालकोंमें ही सम्बंध होता है; अतः गोत्र (पाटनी आदि) की हानि है, इस कारण मोक्षमार्ग नहीं है।

फिर शङ्का—पंचमकालमें कुल और गोत्र दोनों शुद्ध हैं फिर मोक्षमार्ग क्यों नहीं?

उत्तर—पंचमकालमें जिनदीक्षा तो धारण होती है और शास्त्रके आधारसे पंचमकालके अन्त तक होगी, परन्तु मोक्ष संहननकी हीनतासे नहीं होता, परन्तु जिनदीक्षा होती है जो शुद्ध कुलगोत्रकी आवश्यकता रखती है।

फिर शङ्का—जब तुम विजातिविवाह विरोधी जातिको अनादि अनन्त मानते हो तो छठेकाल (दुःखमादुःखमा) में कुल गोत्र हानि होनेसे फिर अनादि अनंत जातिप्रथा कैसे रहेगी?

उत्तर—छठेकालके आरंभमें गोत्र (पाटनी आदि, गर्ग आदि) की हानि हो जावेगी और कुल हानि नहीं होगी; परन्तु धीरे धीरे व्यभिचारकी अधिकतासे मनुष्य कुल हानि करते हुए जातिसंकर हो जायेंगे। अन्तमें ऐसे मनुष्योंका प्रलयसे नाश हो जायगा, जो जातिसंकरतासे बचे हुए हैं; उन पुण्यात्माओंको देव विद्याधर आदि विजयार्द्ध आदि सुरक्षित स्थानोंमें लेजायेंगे। प्रलयका अन्त होने पर वहीं पुरुष अथवा और विजयार्द्ध आदिकोंसे सजाति पुरुषोंके जोड़ा इस भरत-

ऐरावतोंमें लाये जांयगे। फिर ये मनुष्य अपने अपने कुलमें स्वभावसे ही सन्तान उत्पन्न करते रहेंगे। इस प्रकार उत्सर्पिणी-का "दुःखमादुःखमा और दुःखमा" काल पूर्ण होगा। दुःखमा-कालके कुछ समय रहनेपर पुनः कुलकर होंगे जो कुल और गोत्रों-की मर्यादा नियत करेंगे। पश्चात् श्रीतीर्थंकर महाराजका जन्म होगा और फिर गोत्र-कुल-धारा चली जायगी।

फिर शङ्का—उत्सर्पिणीके दुःखमाकालके अन्तमें जब तुम कुलकरों द्वारा कुलगोत्र प्रकट हुए मानते हो फिर ये कैसे होसकता है कि देवोंसे लाये हुए अवसर्पिणीके बचे जीव और विजयार्द्ध आदिकोंसे लाये जीव अपने अपने कुलमें ही सम्बन्ध करेंगे? क्यों कि जब उन्हें अपने पराये कुलका ज्ञान नहीं तो फिर सम्बन्ध कैसे करेंगे?

उत्तर— उन पुरुषोंकी स्वभावतः प्रवृत्ति ही वैसी होगी जो अपने २ कुलोंके मनुष्योंसे विषयसेवन रुचेगा क्योंकि वे मनुष्य पूर्वके छठे काल अवसर्पिणीके नियमसे परिचित हैं; जैसा कि वे अपने २ मातापितादिका नियम देखते आरहे हैं उसीप्रकार करेंगे। विजयार्द्धादिकोंसे लाये जीव भी वैसाही करेंगे जैसीकि उनकी कुल आम्नाय है क्योंकि वहां प्रलयादि नहीं; अतः वंशधारा अविच्छिन्न है। जैसा कि आज भी वही सुपूत हैं जो अपनी कुल-मर्यादासे काम लेते हैं। वही छठे कालमें प्रलयसे बचेंगे और आगामी कुल-रक्षा करेंगे।

कुलका ज्ञान न होना कुलसे च्युत नहीं करता जैसा कि किसी

५ वर्षके बालकसे पूछिये कि तुम्हारी कुल, जाति क्या है ? तो वह यह न जानता हो कि मैं खंडेलवाल हूं तो उसकी खंडेलवाल जातिका होना नष्ट नहीं हो सकता। इसीप्रकार उन्हें अपने कुलका ज्ञान नहीं परन्तु विवाहादि कार्य अपने कुलमें करते हैं जैसाकि उनके चला आरहा है अतः कुलरक्षा होती है।

फिर शङ्का—कुलोंकी रचना जब एकने की तो चौदह ही कुलकर क्यों कहलाये और पंद्रहवें आदिब्रह्मा और सोलहवें भरतजी कुलकर क्यों कहलाये ? देखो प्रमाणमें—

वृषभस्तीर्थकृच्चैव कुलकृच्चैव संमतः।
भरतश्चक्रभृच्चैव कुलधृच्चैव वर्णितः॥

(आदिपुराणजी ३ रा पर्व-श्लोक २१३)

अर्थ—प्रजा भगवान्‌को तीर्थंकर और कुलकर कहती हुई। भरतजीको कुलकर और चक्रवर्ती मानती हुई। इससे विदित होता है कि इनकी भी कुलकर संज्ञा है।

अतः कुल नाम वंश या जातिका नहीं है किन्तु एक बहुतसे कामोंकी रचना करनेवालेका नाम कुलकर है।

उत्तर—भोगभूमिके अन्तमें जब मनुष्योंको अपने जीवन-निर्वाहकेलिये जिन जिन बातोंकी आवश्यकता हुई उन उन बातोंकी शिक्षा ये प्रतिश्रुत आदि १४ मनुष्य देते रहे अतः इनकी संज्ञा मनु कहलाई। इस रचनात्मक कार्यसे ये कुलकर नहीं कहला सकते।

दूसरी बात यह है कि कुल नाम किसी कोषके प्रमाणसे रचनाका

नहीं हैं; जिससे कुलकरका अर्थ रचना करनेवाला समझा जाय।

तीसरी बात यह है कि अनादिअनंत कालसे ये कुलकर युग-की आदिमें होते रहे हैं और इनका मुख्य कार्य कुल (वंश) और गोत्रकी रचनाका रहा है, वही इन्होंने किया है। रही यह बात कि जब आदिके कुलकरने या किसी कुलकरने जब कुलोंकी स्थापना करदी फिर सब क्यों कुलकर कहाये ? तो जानना चाहिये कि जो कुलोंकी स्थापनारूप कार्य था वह आदि कुलकरने किया क्योंकि वह उनका मुख्य कर्त्तव्य कार्य था; परन्तु वह समस्त भरतक्षेत्रमें उस कार्यको न कर सके। फिर जो दूसरा कुलकर था उसने जितना हुवा उस कार्यको किया। इसप्रकार बराबर चौदह करते रहे और इनसे भी जो रह गया उसकी पूर्ति आदिब्रह्माने की अतः ये भी कुल (वंश) स्थापन कार्यसे कुलकर कहलाये। भरतजीने जो दिग्विजयके अर्थ सर्वत्र घूमे उस सबकी पूर्ति करदी; अतः वह भी कुलकर कहलाये। जैसा कि ये १४ कुलकर जीवनका उपाय बतानेसे मनु कहलाते हैं तो हम कह सकेंगे कि जब आदिका कुलकर भी मनु था तो वह जीवनका उपाय बताही चुका था; फिर क्यों सब मनु कहलाये ? तो यह इसका उत्तर होगा कि सब जीवनके उपायकी पूर्ति नहीं हो सकी अतः ज्यों ज्यों जीवनके उपायकी आवश्यकता होती गई त्यों त्यों उन्होंने बताई अतः इनकी मनु संज्ञा हुई। आप फिर यह शङ्का करें कि जीवनके उपायकी तरह वंश स्थापना नहीं है वह तो हो चुका सो हो चुका, परन्तु जब सर्वत्र उसकी पूर्तिकी शक्ति न हो तो किसप्रकार यह कहा

जा सकता है कि प्रथम कुलकर ही पूर्ति कर चुके। क्योंकि प्रथम तो भोगभूमिके जीवोंको अपने प्राक्तन शुभकर्मके उदयसे कल्पवृक्ष समुत्पन्न भोग भोगनेरूप मुख्य कार्यको करते थे पश्चात् जो कुछ बनता था करते थे—

दूसरे सर्वत्र घूमनेकी सामग्री आदि नहीं थी। दृष्टान्त और प्रमाणके लिये लीजिये कि जब आदिब्रह्माने अपने राज्यकालमें ग्राम, नगर, पुर, पट्टन आदिकोंको स्थापन किया उसी समय इन्द्रको स्मरण किया। उस इन्द्रने अपनी विक्रिया-शक्तिसे भगवान्‌की आज्ञा पाकर सर्वत्र ग्राम, नगर, पट्टन आदि स्थापन कर दिये. जिससे इन्द्रभी पुरंदर कहलाया।

ठीक; इसीप्रकारकी सहायता आदिकुलकरको मिलती तो अवश्य आदि कुलकरही सारे भारतमें कुल (वंश) स्थापना कर देता। थोड़ी देरकेलिये हम यहां माने लेते हैं कि आदि ब्रह्माहीने कुल स्थापना किये तो फिर आदिब्रह्माही कुलकर कहला सकते थे, भरतजी नहीं। फिर भरतजीको कुलकर क्यों माना? दूसरी बात यह है कि आदिब्रह्माने कुल गोत्र स्थापन किये तो भगवानकी जो सन्तान हो वह तो अवश्य कुल गोत्रकी शुद्धि सहित होगी परन्तु स्वयं भगवान् तो विशुद्ध कुलगोत्री नहीं हैं क्योंकि भगवानके पिता साधारण भोगभूमियांओंकी संतान होनेसे कोई कुलगोत्रवाले नहीं हैं क्योकि भगवान् जन्मके बाद कुल गोत्र स्थापन करेंगे। तो अभी नाभिरायका कुल गोत्र नहीं। ऐसे कुलगोत्रशून्य नाभिरायके हुए भगवान् तो अभी सामान्य कुलगोत्री भी नहीं शुद्ध कुलगोत्रकी तो बात ही क्या?

आप कहेंगे कि भागवान्ने दीक्षासे पूर्व कुल गोत्रोंकी स्थापना करदी अतः उनका शुद्ध कुल गोत्र हुआ। इसके उत्तरमे पूर्व तो यही कहना है कि भगवान्ने कुल (वंश) गोत्र (काश्यप) आदि स्थापन किये। ये कब और कहां शास्त्रमें लिखा हैं इसका कोई प्रमाण नहीं हैं। हरिवंशपुराणके आधारसे इक्ष्वाकुवंश संसारमें सबसे पहले मुख्यताको प्राप्त हुआ क्योंकि उसमें आदि-ब्रह्माने जन्म लिया जिनसे मोक्षमार्ग प्रकटा। परन्तु आदिब्रह्मा-ने ही इक्ष्वाकुवंश और अपना काश्यप गोत्र स्थापन किया ये तो नही लिखा। यदि थोड़ी देरके लिये वह मान भी लिया जायकि आदिब्रह्माने कुलगोत्र स्थापन किये तो भगवान्की संतान अवश्य शुद्ध कुलगोत्री हो सकेगी क्योंकि कुलगोत्री (आदिब्रह्मा) की सन्तान है। गोमट्टसारजीके आधारसे "संतानकम्मेणागय" ही शुद्ध समझा जायगा। परन्तु आदिब्रह्मा शुद्ध कुलगोत्री न होंगे; परन्तु जातिको अनादि माननेसे भगवान् ऊंचगोत्री हैं तो ऊंचगोत्रकी संतान होनेसे है और कुलकरो द्वारा स्थापित वंश गोत्र मर्यादामे उत्पन्न हुए अतः शुद्ध कुलगोत्री हैं। कुल-करोंको स्वयं जिनसेनाचार्यने कुलको धारण करनेवाला कहा है। भला कुलकर तो थोड़ी देरके लिये इकट्ठे होकर रहनेका उपदेश देनेसे रचनात्मक कार्य बतानेसे हो भी सकते हैं; परन्तु कुलधर तो विना कुल गोत्रको धारण किये नहीं कहाये जा सकते हैं। देखो प्रमाण में—

तत्राद्यैः पंचभिर्नृणां कुलभृद्भिः कृतागसां।

हाकारतल्लक्षणो दण्डः समवस्थापितस्तदा ॥

[आदिपुराणजी पर्व ३ श्लोक २१४]

अर्थः—तहां आदिके पांच कुलधारण करनेवाले प्रतिश्रुत आदिने अपराध करनेवालोको "हा" ऐसा दण्ड स्थापन किया। तो पाठकवर्ग यह समझलें कि प्रतिश्रुत आदि पांचों ही को कुलधारी कहा है तो आदिके प्रतिश्रुत कुलकर कुलधारी हुए। अतः स्पष्ट है कि कुल स्थापनरूप कार्य इनसे ही हुआ। केवल हरिवंशपुराणके आधारपर सूर्य चन्द्रमाका भेद समझाने मात्र कार्य से इनको कुलकर या कुलधर मानना नहीं वनता। भला हमही शङ्का करते हैं कि जव कुलकरका अर्थ इकट्ठे रहनेका उपदेश करना वताया जाता है तो शास्त्र तो केवल सूर्य चन्द्रमाका भेद वताना ही प्रथम कुलकरका कार्य रखता है। तो आदिके प्रतिश्रुत कैसे कुलकर या कुलधर कहलाए; वल्कि समझना चाहिये कि सूय, चन्द्र भेद, शिक्षा ये एक जीवनके उपायरूप थी अतः उस की प्रतिश्रुतजीने शिक्षा दी अतः वो "मनु" कहलाए और "कुलकर" कुलस्थापनासे और "कुलधर" कुलधारण करनेसे। अब शङ्का एक रह जाती है कि जव कुलकर ३६३ शलाका पुरुषों में १४ ही हुआ करते हैं तो आदिब्रह्माको और भरतजीको कुलकर क्यों माना? तो कहना होगा कि जव तीसरेके अन्तकालमें कुलकरोंकी उत्पत्ति हुई और उन्होंने वंशस्थापनरूप कार्य आरम्भ कर दिया और वह शनैः शनैः वढ़ता गया, फिर अन्तमें सर्व देशोंमें जिनके द्वारा वह पूर्ण हुआ उनको शास्त्रकारने "कुलकर" कहा।

इसी कारण आदिब्रह्मा और भरतजीको प्रशंसात्मक रूपसे कुलकर कहा है; अन्यथा ३६३ शलाका पुरुष जो अनादिसे होते आये हैं उनकी संख्या न बनेगी।

पाठक! एक बात और भी ध्यानमें दें कि, आदिब्रह्मा तो केवल तीर्थंकर ही थे जिसपर ग्रन्थकार उन्हें कुलकर कह रहे हैं। परन्तु सोलहवें तीर्थंकर तो चक्रवर्ती और कामदेव भी थे तो भला फिर इन्हें कुलकर क्यों नहीं कहा। अतः स्पष्ट है कि कुलकरोंका कुलस्थापनरूप ही कार्य है। जो प्रथम कुलकरसे उत्पन्न होकर १४ कुलकरोंने किया और उसकी पूर्ति भगवान् और उनके पुत्र भरतजीने की अत: उनको भी ग्रन्थकारने प्रशंसारूपसे कुलकर मनु कह दिया। किंतु ३६३ शलाका पुरुषोंमें होते वही चौदह हैं जो नाभिराय तक हो चुके थे।

जब भगवान विवाहके योग्य हुए तब उनके पिता नाभिराजाको चिन्ता हुई कि पुत्र विवाह योग्य हुवा। इसका विचार करते हुए नाभिराजा विचारते हैं कि इसका कैसी कन्याके साथ विवाह करना? देखो प्रमाणमें—

> तथापि काललब्धिः स्यात् यावदस्य तपस्यतु।
> तावत्कलित्रमुचितं चिन्त्यं लोकानुरोधतः॥
> ततः पुण्यवती काचिदुचिताभिजना वधूः।
> कलहंसीव निःपंकमस्यावसतु मानसं॥

(आदिपुराणजी पर्व १५ श्लो० ५२-५३)

अर्थ—तथापि जबतक तप करनेके लिये काललब्धि न हो

उससे पहले लोकव्यवहारसे इनका किसी योग्य कन्याके साथ विवाह करना आवश्यक है।

इसलिये कोई पुण्ययुक्त और योग्य कुलवाली कन्या जैसे कल हंसी कीचडरहित मानससरोवरमें प्रवेश करती है उसीप्रकार इनके हृदयमें प्रवेश करे।

पाठक विचारें कि जब माता पिताओंको अपने पुत्रादिकोंका विवाह करना होता है तब जाति-गोत्रका विचार उठता है। तब यह पद्धति अनादिकी है या नवीन चल पड़ी है?

परन्तु जिन मनुष्योंको अपनी अक्ल ही डेढ़ अक्ल जंचती हो वह संसारकी समस्त अक्लोंको तुच्छ समझा करते हैं।

यहां कोई यह आशंका करे कि अभिजन शब्दका कुल अर्थ ही क्यों लेते हो जब कि "अभिजनः कुले ख्यातौ जन्मभूम्यां कुलध्वजे इति विश्वः" इस प्रमाणसे कन्याका यह विशेषण हो सकता है कि योग्य है पिता जिसका, अथवा योग्य है कीर्ति जिसकी। इसका उत्तर यह है कि जब पर्वके श्लोकमें यह कहा गया है कि योग्य कन्याके साथ विवाह करना, तब योग्यताकी परीक्षामें ये सब बातें आ जाती हैं कि उस कन्याके पिता आदि योग्य हों अथवा जिसके रूप गुणकी प्रशंसा हो। यदि नहीं भी आती हैं तो दूसरे श्लोकमें जो "पुण्यवती" ऐसा कहा है उससे स्पष्ट है कि जो कन्या योग्य, जिसके पिता योग्य आदि हों ऐसी हो; अथवा रूपादि गुणमें जिसकी कि कीर्ति हो। यदि ये न माना जाय तो कन्या पुण्यवती नहीं हो सकती। परन्तु ये बातें नीच जातिकी कन्यामें भी संभव

है क्योंकि नीच जातिकी कन्याका भी पिता योग्य हो ऐसा संभव है और रूप और शील आदिसे भी जो प्रसिद्ध हो, ऐसा संभव है। परन्तु नीच जातिका कुल ऊंच जातिके कुलके तुल्य नहीं हो सक्ता। इसीलिये ग्रन्थकारने 'अभिजन' शब्द, जिसका अर्थ कुल है उसके साथ दुवारा 'उचित' शब्दका प्रयोग किया है, जिसका अर्थ यही होता है कि योग्य कुलवाली अर्थात् जिस कुलमें विवाह हो सकता है उसी ही कुलकी कन्या चाहिये। कुल और गोत्र जब ही संरक्षित रह सकते हैं जब कि विवाह और उसके द्वारा संतान अपने कुलमें हो। यदि ऐसा न हो और ऊंच जातिका ऊंच जातिमात्रके साथ सम्बन्ध हो और नीच जातिका नीच जातिके साथ सम्बन्ध हो तो केवल दो ही कुल रह सकते हैं, किन्तु जो मनुष्योंके वारह खरब कुल हैं उनकी सन्तान नहीं रह सकती।

इसके अनन्तर जब भगवानके पुत्र होनेवाला है और भगवान् की स्त्री जब स्वप्न देखती है तब उनका कुल दिखाते हुए कहते हैं कि तुम्हारे ऐसा पुत्र होगा। देखो आदि पुराणमें—

मागरच्चस्याद्दासो नगीता जन्मसागरं।
ज्यायान्पुत्रशतस्यार्यमिक्ष्वाकुकुलनन्दनः॥

(आदिपुराणजी पर्व १५ श्लो० १२६)

अर्थ—समुद्रदर्शनका यह फल होगा कि तुम्हारा पुत्र संसार-समुद्रको तिरनेवाला, सौ पुत्रोंसे बड़ा, इक्ष्वाकु कुलका होगा।

पाठकवर्ग! ध्यान दें कि जब भगवानने अबतक "कुल" स्थापन नहीं किये, फिर वहां इक्ष्वाकु कुलका कथन कहांसे आगया?

इससे ज्ञात होता है कि कुल कुलकरोंने ही प्रकट किये थे, जो हो चुके थे।

पाठकगण! अब आगे चलें। जब दशप्रकारके कल्पवृक्ष नष्ट हो गये और मनुष्योंको भोजनादि सामग्री न मिलने लगी तब नाभिरायने प्रजाको भगवान्के निकट भेजा।

तब भगवान्ने असि, मसि आदि छह कर्मोंकी रचना की और प्रजाका कष्ट नष्ट किया। देखो प्रमाणमें—

कर्मभूरद्य जातेयं व्यतीते कल्पभूरुहां।
ततोत्र कर्मभिः षड्भिः प्रजानां जीविकोचिता॥

(आदिपुराण पर्व १५ श्लोक १४५)

अर्थ—कल्पवृक्षोंकी अवधि पूर्ण हुई, अब कर्मभूमि आरंभ हुई इसलिए प्रजाको छह कर्मोंसे आजीविका करनी योग्य है।

इस उपदेशके अनन्तर प्रजा सब भगवानके बतलाए मार्गसे कार्य करती भई। देखो प्रमाणमें—

यथा स्वंस्वोचितं कर्मप्रजा दधुरसंकरं॥
विवाहजातिसम्बन्धव्यवहारश्च तन्मतं॥

(आदिपुराण पर्व १५ श्लोक १८७)

अर्थ—प्रजाके मनुष्य अपने २ योग्य जो कर्म जाने ग्रहण किया ताहि करते भये और विवाहका संबंध जो जातिके साथ व्यवहार रक्खे है, तिस विवाहसंबंधको जातिके साथ करते भए। यहां कोई यह आशंका करे कि इस श्लोकका तुमने जो यह अर्थ किया कि विवाहका संबंध जातिके साथ था उसरूप प्रजा करती भई।

सो यह अर्थ नहीं है, किंतु ऐसा है कि विवाह और जातिका संबंध और व्यवहार भगवान्‌की आज्ञासे करते भए । इसका उत्तर यह जानना कि "तन्मतं" शब्दका अर्थ भगवानकी आज्ञासे हुआ इसमें कोई आपत्ति नहीं भी सही. परंतु 'जातिका संबंध' इसका क्या प्रयोजन है ? शंकाकार तो जातिको कुछ पदार्थ ही नहीं मानता। यदि जातिका अर्थ वंश-कुलसे है तो शङ्काकारके मतसे कुलोंकी स्थापना अभी भगवान्‌ने की नही, वह तो वर्णोंके स्थापन होनेके बाद भगवान् करेंगे, और जाति शब्दका अर्थ क्षत्रियत्व, वैश्यत्व जाति है तो अभी भगवानने क्षत्रिय-वैश्य वर्ण भी तो नियत नहीं किये वह तो भगवान् राजगद्दी प्राप्त होनेके पश्चात् नियत करेंगे। यह तो पूर्व का ही कथन है इसमें क्षत्रिय आदि ही नही। तव फिर जातिके साथ संबध ही कैसा ? और फिर दूसरी बात यह भी है कि जातिका अर्थ यदि वर्णसे है तो वर्णका वर्णके साथ कुछ संबंध हुवा नहीं करता। यदि व्यापार संबंध रक्खा जाय तो व्यवहार शब्द पृथक् पड़ा हुआ है ही। तीसरी बात यह है कि व्यवहार भगवान् की आज्ञासे हुवा; ऐसा अर्थ किया जाता है तो व्यवहार विषयकी आज्ञा तो श्लोकके पूर्वार्द्धमें कह ही दी कि प्रजा अपने २ उचित कर्म (व्यवहार) करती भई। फिर पृथक् व्यवहारका कथन निरर्थक है, अतः यहां द्वन्दसमास न करके अर्थात् विवाह १, जातिसंबंध २ व्यवहार ऐसा न मानकर "विवाहस्य जातिसंबंधेन सह यो व्यवहारः" ऐसा समास कर "तन्मतं" शब्दसे मिलाना। अर्थात् विवाहका जो जातिके साथ सम्बन्धरूप व्यवहार है सो

भगवान्की आज्ञानुसार हुवा । अथवा तन्मतं तादृशं-अर्थात् असंकरं-जातं (अर्थः) जाति जातिमें सम्बन्ध होता भया मिलाप करना ही भया ।

पाठकगण ! इस शास्त्रीय आज्ञाके होते हुए भी विवाहसम्बन्ध विजातिमें प्रतिपादन करना सर्वथा शास्त्रको जलाञ्जुलि देना है । जब आदिपुराणजीके ये वाक्य स्पष्ट रूपसे मिलते हैं फिर अपनी धींगाधींगीसे अपनी ढाई चावलकी जुदी खिचडी पकाना केवल आगमकी अवहेलना करना है अन्य कुछ नहीं । जैसाकि वर्तमानमें विवाह अपनी २ जातिमें होता है यही योग्य है और यही शास्त्रकी आज्ञा है । इसके विरुद्ध हम यह शङ्का कर सकते हैं या नहीं कि खण्डेलवालोंका विवाह पद्मावतीपुरवालोंके साथ क्यों नही होता ? शास्त्रमे विवाह करनेकी किसप्रकार आज्ञा है ? तो क्या उत्तर हो सकेगा ? थोडी देरकेलिए हम यह मान ले कि वर्णव्यवस्थासे विवाह होता है तो कोई मनुष्य सौ दो सौ वर्षके भीतर एकसा व्यापार भले ही करता हो, परन्तु हजारों मनुष्य आज व्यापार करते हैं-कल नौकरी। सैकड़ोंके पिता खेती करते रहे और पुत्र अध्यापकी (ब्राह्मण कर्म) कर रहे हैं । भला फिर जो आदिपुराण-जीके आधारसे अनुलोम विवाह मानने वाले हैं वह उन अध्यापकी करनेवाले ब्राम्हणोंकी कन्या न ले सकेंगे या यह मानना होगा कि वर्ण तो व्यापारकी ठीक सत्तासे निश्चित नहीं हैं और जो जाति-सम्बन्धसे विवाह होना है उसे मटियामेंट करे ही देते हैं तो स्पष्ट शब्दोंमें क्यों नहीं कह दिया जाता कि जिस किसी

जातिकी कन्यासे जिसका मन मिले वह वह अपनी २ इच्छानुसार विवाह कर लें, कोई किसीप्रकारका वन्धन नहीं है।

इसके अनन्तर भगवान् कहते हैं कि मैं तो विदेहोंके अनुसार तीन वर्ण नियत करता हूं और एक ब्राह्मण वर्ण भरत नियत करेगा। इसप्रकार चार वर्ण होंगे और जो जिस व्यापारको करे वह उसहीको करे। देखो प्रमाणमें—

> शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या तां स्वां च नैगम।
> वहेत्स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्च ताः॥
> स्वामिमां वृत्तिमुत्क्रम्य यस्त्वन्यां वृत्तिमाचरेत्।
> स पार्थिवैर्नियन्तव्यो वर्णसंकीर्णिरन्यथा॥
>
> (श्री आदिपुराण पर्व १६ श्लोक २४७।२४८)

अर्थ—शूद्रका कर्म शूद्रही करे और न करे। वैश्य अपना कर्म करे और कभी आपत्ति समय हो तो शूद्रकर्म भी करे और क्षत्रिय अपना करे और कभी आपत्तिसमय हो तो वैश्य और शूद्रका भी कर्म करले। तथा ब्राम्हण अपना कर्म करे और कभी आपत्ति समय हो तो वैश्य-क्षत्रिय-शूद्रका भी कर्म करले। जो इस क्रमको छोड़ कर दूसरे रूपसे आजीविका करेगा वह राजाओं से दंडनीय होगा और वर्णसंकरता होगी।

पाठक महाशय! विचार करें कि जो कर्म (व्यापार) मुख्य आजीविकाका साधक था, वह आजीविकासे सम्बन्ध रखता है, विवाहसे नहीं। आज हमारी वर्णव्यवस्था व्यापारकी गड़बड़से जो नष्ट हो गई है, उसका विवाहसंम्बन्धमें कोई प्रयोजन नहीं, न

कोई इस बातका विचार करता है कि जब जौहरी व्यापार करता है, इसलिए यह वैश्य है, हम विद्या पढ़ानेको नौकरी करते हैं इसलिए हम ब्राह्मण हैं। अतः हमको सम्बन्ध नहीं करना चाहिए। किन्तु जो विवाहसम्बन्ध निज जाति और अन्य गोत्रमें होना चाहिए (यह शास्त्रकी आज्ञा है) उससे ही विवाहसंबंध होता है। वर्णव्यवस्थाका वर्तमानमें जो अभाव हो रहा है, उसका कारण राज्यका परिवर्तन और समयका प्रभाव है।

जो व्यापार अपने कुलपरंपरासे होता आ रहा है उसीको करे यह शक्ति नहीं रही और न इसके रहनेसे हमारा जातिसम्बन्ध कुछ नष्ट हो सकता है। क्योंकि जातिसम्बन्ध जन्मसे सम्बन्ध रखनेवाला है और वहा सम्बन्ध गोत्रकर्मकी अविच्छिन्नधारामें सम्बन्ध रखता है।

यहां पर हमको यह प्रकट कर देना भी आवश्यक है कि—"शूद्रा शूद्रेण" यह श्लोक आदिपुराणजीका पर्व १६ का २४७ वां है। जिसका कि अर्थ हमने पूर्व लिखा है, वह छै प्रकारके असि-मसि आदि कर्म करने वालोंकेलिए कहा गया है। परन्तु विजाति-विवाहके कर्त्ता इसका ऐसा अर्थ लगाते हैं कि ब्राह्मण ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रकी कन्यासे विवाह करले क्षत्रिय क्षत्रियसे वैश्य शूद्रसे विवाह करले आदि। यह अर्थ सरासर मिथ्या है यहां विवाह सम्बन्धका कोई कथन नही है किंतु असि-मसि आदि षट् कर्मोंके करनेका प्रसङ्ग है। केवल मायाजालसे शास्त्रके अर्थका अनर्थ करना है।

यहां कोई यह शङ्का करे कि "शूद्रा शूद्रेण वोढ़व्या" इसमे आयेहुये शूद्रा शब्दका अर्थ-व्याकरणके किसी नियमके अनुसार शूद्रवृत्ति नहीं हो सकता। जब शूद्रवृत्ति अर्थ करेंगे तब शूद्रा शब्द बन ही नहीं सकता; किंतु "शौद्रीया, शूद्रीया' बनेगा और श्लोक में जब "शूद्रा" शब्द है तब उसका अर्थ केवल शूद्र जातिकी कन्या होगा, शूद्र-वृत्ति नहीं हो सकता।

इसके उत्तरमें कहना पड़ता है कि शङ्काकार व्याकरणका ज्ञान नहीं रखता। शूद्रा शब्दका अर्थ शूद्रकन्या और शूद्रक्रिया यह दोनों हैं। प्रकरण यहां आजीविकाका है अतः शूद्राका अर्थ-शूद्र-कन्या करना तो अनर्थ करना है जैसाकि "सैन्धवमानय" ऐसा भोजन समयमें कहा हुआ सैंधव नाम नमकका बोधक ही हो सकता है, न कि घोड़ेका। इसीप्रकार यहां जब भगवान्ने आजी-विकाके अर्थ षट्कर्मोंकी शिक्षा दी तब शूद्राका अर्थ शूद्रक्रिया ही होगा। जिसकी पुष्टि अगले श्लोकमें "इमां" शब्द कर रहा है। जो इदम् शब्द हस्त अंगुलि निर्देशसे निकटका बोध करा रहा है, जिससे "शूद्रा" शब्दका अर्थ शूद्रवृत्तिको छोड़कर अन्य हो नहीं सकता। शूद्र शब्दका अर्थ शूद्रवृत्ति, पाणनीयव्याकरणके अनु-सार इसप्रकार है। "तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्" यह मतु पूजा अधिकार सम्बन्ध और अधिकरण अर्थमें होता है। जैसे-गाव. सन्ति, अस्य स गोमान नरः, अथवा गावः सन्ति अस्मिन्निति गोमान्-देशः, तथैव शूद्र शब्दसे "अर्शआदिभ्यच्" इस सूत्रसे टाप प्रत्यय करने पर-और "अजाद्यन्तष्टाप्" इस सूत्रसे टाप् प्रत्यय

करने पर "शूद्रा" शब्द सिद्ध हुवा जिसका अर्थ हुआ शूद्र-वृत्ति। जैसा कि "शूद्रो नियुक्तोऽस्यां सा शूद्रा" इसीप्रकार जैनेंद्र-व्याकरणसे "शूद्राः सति यस्यां वृत्तौ सा शूद्रा" इस व्युत्पत्तिमें ओभ्रादिभ्यः ४।१। ६८" सूत्रसे "अ" प्रत्यय होता है और "अजाद्यतां टाप्" इस सूत्रसे "टाप्" होता है तब शूद्रा शब्दका अर्थ शूद्रवृत्ति होता है। इसीप्रकार शाकटायन व्याकरणसे "शूद्रा" शब्द सिद्ध होता है "अभ्रादिभ्यः" ३।२।१४२ सूत्रसे "अ" प्रत्यय होता है और "अजाद्यन्ताङ्" सूत्रसे "आङ्" होकर शूद्रा शब्द बनता है, जिसका अर्थ शूद्रवृत्ति होता है। कोई यहां यह शङ्का करें कि यहां भगवान्‌ने धर्म, अर्थ, काम तीनोंही वर्गोंका उपदेश दिया है। अतः शूद्रा शूद्रेण वोढव्या' यह आज्ञा व्यापार विषयक नहीं है, किन्तु कामसंबंधसे विवाह विषयकी है।

इसका ऐसा उत्तर जानना कि धर्मके उपदेशको तो गृहस्थावस्था में तीर्थंकर करते नहीं। दूसरे धर्मका उपदेश दिया भी क्या? कोई धर्मका स्वरूप या भेद दिखाया नहीं; अतः ऐसा मानना मिथ्या है। यहां जो "स्वधर्मानतिवृत्त्यैव" ऐसा कहा है उसका अर्थ ऐसा है कि धर्म किसी अवस्थामें भी त्यागा न जाय। व्यापार किया जाय परन्तु धर्म मुख्य रहे एतावता इस व्यापारके विषयके नियमको जो आदिब्रह्मा वर्ण नियत कर रहे हैं, उसको पालन करनेकी आज्ञा है। यदि अनुलोमरूपसे वर्णोंमे विवाह करनेका उपदेश ही आवश्यक था तो "क्वचित" ऐसा विशेषण क्यों देते?

ब्राह्मण तो क्षत्रियादिकोकी कन्या ले ही सकता था, क्षत्रिय

ब्राह्मणकी नहीं ले सकता फिर क्वचित्का क्या प्रयोजन? अतः इस श्लोकका प्रसंगसे शूद्रक्रिया ही अर्थ जानना; जिसकी पुष्टि "इमां" यह शब्द कर रहा है। जो हस्तअंगुलिनिर्देशसे व्यापार की सूचना दे रहा है।

पाठकगण! जब भगवान्ने नगर, पुर, पट्टन आदिकोंकी रचना रच दी, और प्रजाकी आजीविकाके लिये छह कर्मोंका उपदेश दे चुके और उसकी पुष्टिके लिये वर्णव्यवस्था भी नियत कर दी और अन्यथा करनेवालोंको दण्ड भी नियत कर दिया और राजाओंका कर (टैक्स) लेकर राज्य करना भी बताया, परन्तु राजाओंको बड़े राजाओंकी आज्ञामें चलाना आवश्यक समझा। अत. मंडली महामण्डली आदि पदोंकी स्थापनाके लिए राजाओंको बुलाकर उनको महामण्डली आदि पद देते भये। देखो प्रमाणमें—

समाहूय महाभागान् हर्यकम्पनकाश्यपान्।
सोमप्रभं च सम्मान्य सत्कृत्य च यथोचितं॥
कृताभिषेचनानेतान् महामण्डलिकान् नृपान्।
चतुःसहस्रभूनाथपरिवारान् व्यधात् विभुः॥
सोमप्रभः प्रभोराज कुरुराजसमाह्वयः।
कुरूणामधिराजोभूत् कुरुवंशशिखामणिः॥
हरिश्च हरिकान्ताख्यां दधानस्तदनुज्ञया।
हरिवंशमलंचक्रे श्रीमान् हरिपराक्रमः॥
अकम्पनो पिष्टश्रीसात् प्राप्तश्रीधरनामकः।
नाथवंशस्य नेताभूत् प्रसन्ने भुवनेशिनि॥

काश्यपोपि गुरोः प्राप्तमघवाख्यः पतिर्विशां।
उग्रवंशस्य वंश्योभूत् कि नाप्यं स्वामिसम्पदा॥
तथा कच्छ महाकच्छप्रमुखानपि भूभुजः।
सोधिराजपदे देवः स्थापयामास सत्कृतान्॥
पुत्रानपि यथायोग्यं वस्तुवाहनसंपदा।
भगवान् संविधत्त स्म तद्दिराज्यार्जने फलं।

(आ० पु० पर्व १६ श्लोक २५६ से २६३ तक)

अर्थ—अधिक है पुण्य जिनका ऐसे हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभको बुलाकर और उनका यथायोग्य सन्मान कर और सत्कार करके आदिब्रह्मा चार हजार राजाओंका स्वामी महा-मण्डली पद सहित इनको करता भया॥ २५६—२५७॥

कुरुवंशका जो मुकुट ऐसे सोमप्रभ नामधारी राजाका कुरुराज नाम बदल कर वाहि कुरुदेशका राज्य देता भया॥२५८॥

हरिनामधारी राजाका हरिकांत नाम रक्खा जो इन्द्र जैसा पराक्रमी था वह हरिवंशको इस महामण्डलीपद पानेसे सुशोभित करता भया॥ २५९॥

अकम्पन भी भगवान्से श्रीधर नामको प्राप्त होकर भगवान्के प्रसन्न होने पर नाथवंशका नायक हुवा॥ २६०॥

उग्र वंशमें उपजा काश्यप राजा भी भगवान्से मघवा ऐसा नाम प्राप्त किया। स्वामीकी कृपासे क्या न प्राप्त हो॥ २६१॥

इसीप्रकार भगवान्ने कच्छ महाकच्छ राजाओंको अधिराज पदमें स्थापन किया॥ २६२॥

इसीप्रकार भगवान्‌ने अपने पुत्रोंको भी राज्य तथा वाहन आदि सम्पदा दी। यही राज्य प्राप्त होनेका फल भगवान्‌ने लिया।२६३।

पाठकवर्ग! विचारें कि यहां भगवान्‌को जब राज्यगद्दी मिली तब राज्यकी सुव्यवस्थाके लिए सोमप्रभ-अकम्पन आदि राजाओं को बुलाकर मण्डलेश्वर-महामण्डलेश्वर आदि पद प्रदान किये। यहा पर सोमप्रभ आदिकोंका पता बतानेके लिए उनका कुल वर्णन किया गया है, न कि कुलोंकी स्थापना की गई है। यदि कुलोंकी स्थापना की जाती तो कुलोंके स्थापनका प्रयोजन दिखाते और यह भी दिखाते कि इतने कुल ऊंचगोत्रियोंके नियत किये और नीचगोत्रियोंके इतने किये गये सो कुछ भी नहीं है और २६२-२६३ वें श्लोकसे तो किसीप्रकारकी शङ्का भी नहीं रहती कि; कच्छ महाकच्छ राजाओंको अधिराजपद दिया, किंतु कुलका कुछ भी कथन नहीं है। इसीप्रकार अपने पुत्रों को अन्य राजाओंके सदृश सम्पदा देनेका कथन है किंतु कुल गोत्रके बनानेका कथन नहीं है।

यहां पर यह भी जान लेना चाहिये कि जो लोग ऐसा कहते हैं कि कच्छ, महाकच्छ इक्ष्वाकुवंशके नहीं थे, भगवान्‌ने स्वयं अपना विवाह इक्ष्वाकु जातिमें नहीं किया, यह सरासर झूठ है और जनताको धोखा देना है।

इन श्लोकोंमें कच्छ महाकच्छकी कोई जाति नहीं कही गई केवल भगवान्‌के द्वारा उनको अधिराज पद दिया गया, ऐसा है। अन्य राजाओंकी जातिका तो वर्णन भी है, परन्तु कच्छ महाकच्छ के कुलका नाम भी नहीं है। फिर भगवान्‌का ही विवाह विजा-

तिमे हुवा ऐसा कहना सरासर मिथ्या नही तो और क्या है ?

थोड़ी देरके लिए यहां हम यह मान लें कि भगवान्ने सोमप्रभ आदि राजाओंको बुलाकर कुल स्थापन किये मडलेश्वर आदि पद नहीं, जो ऐसा कहते हैं कि सबसे प्रथम इक्ष्वाकुकुल स्थापन किया तो यह कथन भी मिथ्या ठहरता है क्योंकि यहां तो सबसे प्रथम यह कथन आया कि कुरुवंशी सोमप्रभ राजाको कुरुदेशका स्वामी बनाया। इससे कुरुवंशकी उत्पत्ति हुई, इक्ष्वाकुवंशकी नही।

पाठक गण ! कहे क्या कुछ कहनेकी बात नही है। विजाति-विवाह पक्षवालोंकी व्यवस्था उन्मत्त पुरुषोंकी सी हो रही है। कहीं तो कुल गोत्र आदि ब्रह्माने चलाये, ऐसा कह रहे हैं। कहीं हजार दो हजार वर्षोंसे चले, ऐसा कह रहे हैं । परन्तु कहे क्या समाज शास्त्रज्ञान शून्य होती जा रही है और सुधारकदल अहर्निश प्रयत्न-कर रहा है कि जैसे भी हो कुलमर्यादा नष्ट होकर स्वेच्छाचारकी प्रवृत्ति हो जाय। पाठकवर्ग ! ध्यान दे कि जब भगवान्ने राज्यगद्दी प्राप्त करली और राज्यका सब कार्य निर्बाध चालू कर दिया, तब प्रजा प्रसन्न होकर इसरूपसे प्रशंसा करती हुई।

देखो प्रमाणमें—

> आकनाच्चतदेक्षूणां रससंग्रहणं नृणां।
> इक्ष्वाकुरित्यभूद देवो जगतामभिसंमतः ॥
> काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनात्।
> जीवनोपायमननान्मनुः कुलधरोप्यभूत् ॥

(आ० पु०जी पर्व १६, श्लोक २६४। २६६)

अर्थ—मनुष्योंको ईखोंके रस निकालनेमें लगाया जिससे जगत्मान्य इक्ष्वाकु हुए । ३६४ ।

काश्य नाम तेजका है, तुम तेजधारी हो इसलिए काश्यप हो । जीवनका उपाय बताने पर मनु हुये और कुलधर भी हुए ।२६६।

पाठकगण ! विचारें कि जब भगवान् अपने इक्ष्वाकुकुल और काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुए थे, तब प्रजा उनकी प्रशंसा करती हुई कहने लगी कि तुम ही सच्चे इक्ष्वाकुवंशी और काश्यप गोत्री हो ।

आज भी कोई मनुष्य कोई योग्यताका कार्य करता है तो उसकी अनेकप्रकारसे प्रशंसा की जाती है । यही बात यहां समझनी चाहिए । जब भगवान स्वयं इक्ष्वाकुवंशी और काश्यपगोत्री हैं तो समझना चाहिए कि कुल गोत्रकी मर्यादा हजार दो हजार वर्षसे नहीं चली, किंतु अनादिनिधन है, कुलकर इसके प्रकट करनेवाले हैं ।

पाठकवर्ग ! अब आप शास्त्रकी उन करने योग्य ५३ क्रियाओं पर ध्यान दीजिए कि जिनमें गृहस्थीका आदर्श कर्तव्य है ।

ततोस्य गुर्वनुज्ञानादष्टौ वैवाहिकीक्रियाः ।
वैवाहिके कुले कन्यामुचितां परिणेष्यतः ॥
(आदिपुराण पर्व ३८ श्लोक १२७)

अर्थ—गृहस्थको अपने बालककी गुरुकी आज्ञासे विवाहक्रिया करनी । वह विवाहक्रिया, विवाहके योग्य जो कुल होय उसमें करनी ।

पाठक महाशयो ! ध्यानसे विचारिये कि शास्त्रकी आज्ञा विवाह-

योग्य कुल (जाति) मे करनेकी है, यदि वर्णव्यवस्थासे विवाह अभीष्ट होता तो वहां "विवाह-योग्य वर्णमे विवाह करना" ऐसा होता, परन्तु स्पष्ट आज्ञा है, कुछ छिपी वात नहीं है।

यहां कोई यह शङ्का करे कि जव विवाहकी आज्ञा निज जातिमें करनेकी है तो शास्त्रकारने "वैवाहिके कुले' ऐसा क्यों कहा ? स्पष्ट शब्दोंमें "निजकुले" ऐसा क्यों नहीं कहा ?

इसका यही उत्तर है कि जव स्पस्टरूपसे विवाहका सम्बन्ध अपनी जातिके साथ संवंध रखता है, इसको ग्रन्थकार पूर्व स्पष्ट-रूपसे कह ही चुका है तो वह एक साधारण वात है, उसहीको सामान्यरूपसे यहा कह दी है कि विवाहक्रिया विवाहयोग्य कुलमे ही हो सकती है। यदि शास्त्रकारको वर्णमें विवाह करनेकी आज्ञा देनी होती तो वर्ण शब्द आता या शङ्काकारके मतसे जो कि जाति शब्दको वर्णवाची मानता है यह (जाति) ही होता। यहां तो स्पष्ट "कुल शब्द" है, जिससे त्रिकालमें भी विवाह वर्णसे संवंध नहीं रखता।

परमस्थान सात वतला ये हैं, उनमें किन किन वातोंको उत्तम माना हैं यह देखिये—

सज्जातिः सद्गृहित्वं च पारिव्राज्यं सुरेन्द्रता।
साम्राज्यं परमार्हन्त्यं परनिर्वाणमित्यपि॥

(श्री आदिपुराण पर्व ३८ श्लोक ८४)

अर्थ—सज्जाति १ सद्गृही २ दीक्षा ३ सुरेन्द्र ४ साम्राज्य ५ अर्हन्तपद ६ निर्वाण ७।

इन सात स्थानोंमें सज्जाति नामक उत्तम स्थानका ही स्वरूप प्रकट करते हैं क्योंकि वह पहला है, वह नहीं हो पावे तो आगेका कोई नहीं हो सकता और वही प्रकरणमें विवादास्पद है।

देखिये प्रमाणमें—

पितुरन्वयशुद्धि र्या तत्कुलं परिभाष्यते।
मातुरन्वयशुद्धिस्तु जातिरित्यभिलप्यते॥
विशुद्धिरुभयस्यास्य सज्जातिरनुवर्तिता।
यत्प्राप्तौ सुलभाम्भोधेरयत्नोपनतैर्गुणैः॥

(श्री आदिपुराण पर्व ३८ श्लो० ८५।८६)

अर्थ-पिताके वंशकी जो शुद्धि है वह कुल है और माताके वंश की जो शुद्धि है वह जाति है और माता पिता दोनोंके कुलकी शुद्धि वह सज्जाति है जिसके कि प्राप्त होते संसारसमुद्र पार होता है।

पाठको! इन आगम वाक्यों पर इतना ध्यान लगाइये कि, माता पिताकी वंश शुद्धि क्या है जिसकी प्राप्ति विना मोक्ष नहीं हो सकती। वह यही है कि संतानक्रमसे वरावर चली आई जो वंशकी शुद्धि वही वंशशुद्धि है। वह शुद्धि जव माता पिताओंकी हो तो उसमें उत्पन्न हुआ वालक सज्जाति पदको प्राप्त हुवा कहावेगा और वही वालक मोक्षका अधिकारी होगा।

यहां पर पाठक यह भी विचारें कि माता पिताकी शुद्धि ही अभीष्ट है या वर्णशुद्धि भी? शास्त्रोंका उत्तर है कि नही। पाठकवर्ग! क्या किया जाय समाजमें कोई राजा नही है अतः जिसकी

जो इच्छा होती है वह अपनी इच्छानुकूल कह देता है, स्वतन्त्रताका जमाना है। सब बातें जब स्वतंत्र हैं तब वचन क्यों न स्वतंत्र हों।

यहां कोई ऐसा कहे कि यह नहीं है कि माता पिताओंके वंश की शुद्धि कुल शुद्धि हो। किंतु किसी प्रकारसे किसीके वंशमें कोई दोष लग जाय उसको कुल दोष कहते हैं। देखो प्रमाणमें—

कुतश्चित्कारणाद्यस्य कुलंसंप्राप्तदूषणं।
सोपि राजादिसंमत्या शोधयेत्स्वकुलं यदा॥
तदास्योपनयाहत्वं पुत्रपौत्रादिसंततौ॥

(आदिपुराण पर्व श्लोक १६८।१६९)

अर्थ—किसी कारणसे यदि किसीके कुलमें कोई दोष लग जावे तो वह राजा आदिकी संमतिसे अपने कुलको शुद्ध करले और उस दोषको शुद्ध करने पर अपने पुत्र पौत्रादिकोंकी यज्ञोपवीत आदि क्रिया करसकता है।

पाठकगण! विचारें कि जब सज्जाति मनुष्य किसीप्रकारसे अर्थात् हिंसा, असत्य, चोरी आदि दोषोंसे दूषित होनेपर भी यज्ञोपवीत आदि संस्कार नहीं कर सकता और दोषी समझा जाता है और इसही दोषको धीटता से सज्जातिमें दोष बताना-भूल है। जो मनुष्य सज्जाति होने पर भी किसी चोरी आदि कारणसे दूषित हो गया हो वह भी संस्कारोंको विना शुद्ध हुए नहीं करसकता, भला फिर जिसकी जाति कुजाति है वह तो सर्वथा अशुद्ध है वह किसी प्रकार सज्जाति नहीं हो सकता।

अब चलिये दीक्षा परमस्थानपर, उसमें शास्त्रकार क्या कहते हैं-

विशुद्धकुलगोत्रस्य सद्वृत्तस्य वपुष्मतः।
दीक्षायोग्यत्वमाम्नातं सुमुखस्य सुमेधसः॥

(आदिपुराण पर्व ३८ श्लोक १५८)

अर्थ—दीक्षायोग्य वही पुरुष कहा है जिसका विशुद्ध कुल हो और गोत्र हो और श्रेष्ठ जिसका आचरण हो और बुद्धिमान् सुंदर एवं हीनांगी न हो।

जो मनुष्य यह शङ्का करते हैं कि जाति गोत्र ये दो क्या बात है? कहांसे आगई? उन्हें इस शास्त्रके आधार पर ध्यान देना चाहिये कि इस महामान्य आदिपुराणजीमें उसही मनुष्यको दीक्षा धारण करनेका अधिकारी बनाया है जिनका कुल और गोत्र शुद्ध है। अब हम पूछते हैं कि—कुल गोत्र क्या चीज हैं और दीक्षा धारण करनेवालोंको इनकी शुद्धिकी क्या आवश्यकता है? तथा इनकी शुद्धि किस प्रकार रह सकती है?

उन मनुष्योंके पास जो मनुष्य जातिको एकही जातिके अंतर्भूत करना चाहते हैं या एकही समझते हैं, कुल और गोत्रकी शुद्धि का क्या उपाय है? क्योंकि मनुष्यकी जाति एक ही है तो कुल और गोत्रकी शुद्धि क्या?

जिन मनुष्योंका यह पूछना है कि खण्डेलवाल जाति क्या है और उसके लुहाड़ा पाटनी आदि गोत्र क्या? उन्हें समझ लेना चाहिए कि वही खंडेलवाल जाति और वह ही पाटनी लुहाड़ा आदि गोत्र हैं जिनकी शुद्धता रखना शास्त्रकी आज्ञानुसार आवश्यक है। उनकी शुद्धता भी वही है जो उस जातिका उसी जातिमें विवाह हो।

जो महाशय यह जानना चाहते हों कि जाति और गोत्र क्या है ? वे हमको ही उत्तर देवें कि भगवान्‌का जन्म इक्ष्वाकु जाति और काश्यप गोत्रमे हुवा । सो इक्ष्वाकु जाति और काश्यप गोत्र क्या था इसका उत्तर यही हो सकता है कि जाति गोत्रकी व्यवस्था अनादि निधन है, वही यह परिपाटी है, नवीन नहीं किंतु अनादिकालसे चली आई और चली जानेवाली यह जाति गोत्र व्यवस्था है इसको शुद्ध रखनेवाला ही दीक्षाधिकारी है।

पाठको ! संसारमें जो मान, अहंकार उत्पन्न होता है वह किसी वड़ी चीजके प्राप्त होनेसे होता है । यदि किसी मनुष्यको अहंकार हो तो एक रत्नके प्राप्त होनेसे तो होगा,कंकड मिल जाने से न होगा । तव जो शास्त्रकारोंने आठ मदके कारण कहे हैं, उनमें कुलमद जातिमद भी कहा है परन्तु वर्णमद नहीं वतलाया है। इसका कारण यह है कि वर्ण कोई उतना उत्तम पदार्थ नही है जिसको पाकर घमण्ड करे । क्योंकि कोई वैश्यवर्णका मनुष्य रुईका वयापार करता है उसके पास दस हजार रुपये है, कोई दूसरा वैश्य मनुष्य रुईका व्यापार करता है वह लाख रुपयेकी हैसियत वाला है, तो वहां समान व्यापार होनेसे और समान वर्ण होनेसे कोई वात मान करनेकी नहीं है । यदि मान करनेकी कोई है तो धन है सो वह जिसके पास अधिक होगा वह कह सकेगा कि मेरे पास इतना धन है, सो शास्त्रकारोंने पहलेही धनको मदका कारण कहा है।

इसीप्रकार कोई क्षत्रिय दश हजारकी जमावाला लखपती वैश्यसे

मान नही कर सकता क्योंकि व्यापार मानका कारण नही होता। मानका कारण है व्यापारका फल धन। सो उसके होने न होनेसे मदका होना न होना ही है। कुलमद जो अपने खानदानका अभिमान होता है वह मद कहा है और उसका मद होता भी है। इसीप्रकार अपनी जातिका अर्थात् मातृपक्षका मद होता है। ये सब बातें बालगोपाल तक प्रसिद्ध हैं। देखिये प्रमाणमें—

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः॥

(श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचारजी श्लोक २५)

अर्थ—ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, धन, तप, शरीर इन आठों से मद होता है,ऐसे ये आठ मदके कारण गणधरोंने कहे हैं।

किसीको संसारमे यह मद नही होता कि हम अमुक व्यापार करते हैं इसलिये बड़े हैं। आज दिल्लीमें हलवाई लखपती हैं तो क्या कोई कह सकेगा कि अमुक व्यापार बडा है या उसके करनेवाला बडा है, टेक्स देता है, इसलिए व्यपार कोई बड़ा नही, बड़ा है भाग्य जिससे धन अधिक मिलता है, सो मदका कारण शास्त्रकारोंने कहा ही है। यहां कोई यह शङ्का करे कि जातिमद तो यही कहा है, उस जातिशब्दका प्रयोजन वर्णसे है। देखो प्रमाणमें—

ततः कलयुगेऽभ्यर्णे जातिवादावलेपतः।
भ्रष्टाचाराः प्रपत्स्यन्ते सन्मार्गप्रत्यनीकताम्॥

(आदिपुराणजी पर्व ४० श्लोक ४७)

अर्थ—कलियुग समीप आयगा तब ये अपनी ब्राह्मणजातिके

मानसे सदाचारसे भ्रष्ट होकर उस श्रेष्ठ मोक्षमार्गके विरोधी बन जायगे। जब इस श्लोकमें ब्राह्मण जातिका मद ऐसा कहा है— तो यह स्पष्ट है कि ब्राह्मणवर्णके मदको ही ब्राह्मणजातिमद माना है।

पाठकगण! इसका उत्तर यह है कि यहां जाति शब्दका अर्थ ब्राह्मणत्व कर्मसे है अर्थात् हम ब्राह्मणकी क्रिया करते हैं, इससे है। अष्ट मदमें जो जातिमद है वह मातृ पक्षसे है। इन स्पष्ट बातों के होते हुए भी अपनीही कहे जाना मिथ्या है। यहां कोई यह शङ्का करे कि विवाह जब एक जातिमें ही होता है तो कुलमद और जाति-मद ये दो क्यों कहे? क्योंकि जब विवाह एक वंशमें होते हैं तब वंश मातापिताओंका एकही होगा, फिर मद प्रकरणमें कुल और जाति ये दो मद पृथक् क्यों कहे? इसका उत्तर यही हो सकेगा कि कुल और जाति शब्द वंशवाची हैं जो कि हम "अमरकोष" के प्रमा-णसे पूर्व लिख चुके हैं। परंतु यहासे एक साथ ही गये और आठ मदोंमें इन दोनोंके मिलनेसेही आठमद पूरे होते हैं तो यहा पारि-भाषिकरूपसे ऐसा जानना चाहिये कि कुलमद यह होगा कि हम और हमारे बाप दादे ऐसे श्रेष्ठ घरानेके हैं जिसमें निरंतर सत्कर्मही होता चला आ रहा है या लक्ष्मीका वास रहा है। इसीप्रकार जाति मदसे प्रयोजन है ननेरा माताके घरानेका जैसा कि पं० दौलतराम-जीने कहा है "पिता भूप वा मातुल नृप जो होय न तो मद ठाने" इन दो मदोंके पृथक् २ कहनेसे यह नहीं हो सकता कि समान जातिमें विवाह नहीं होता, भिन्नमें होता है। यदि शास्त्रकारको

वर्णमद अभीष्ट होता तो स्पष्ट कहते कि वर्णमद भी एक मद है, और भला पाठक ही विचारें कि वर्ण जो एक व्यापारसे संबध रखनेवाली क्रिया है उसका मद ही क्या ?

कोई दो मनुष्य एकसा रुईका व्यापार करते हैं तो वर्णरूपसे मद नहीं कर सकते, परन्तु वो ही दोनो एक लखपती है एक दश हजारका धनी तो लखपती दशहजार वालेसे मद कर रहा है, क्योंकि रुपयेमें अधिक है। सोई हम कहते हैं कि मदका कारण धन है सो यह ऋषियोंने पृथक् कहा ही है। यदि वर्ण मदका कारण होता तो आचार्य उसको पृथक् अवश्य कहते।

पाठकगण ! वैराग्य प्राप्त होने पर वारह भावनाओंका चितवन जब होता है, उसमें वोध दुर्लभ भावनाका मनुष्य विचार करता है "मनुष्य पर्याय कठिनतासे मिली और वहां भी उत्तम कुल और उत्तम जातिकी प्राप्ति कठिनतासे मिली" इत्यादि कथन है। यहा पर विचार यह करना है कि जब मनुष्यका कुल और जाति कोई चीज ही नहीं तथा सब मनुष्यजाति एकसी है, तो क्यो उत्तम कुल और उत्तम जातिको उत्तरोत्तर उत्तम वताया है ? इसके प्रमाणमें देखो—

अनित्याशरणासंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्त्रवसंवरनिजरालोकबोधदुर्लभधर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः। तल्लाभे च देश कुलेन्द्रियसम्पन्निरोगत्वानि उत्तरोत्तरमतिदुर्लभानि।

(श्री सर्वार्थसिद्धि अध्याय ९ सूत्र ७)

जो मनुष्य जैनियोकी चौरासी जातियोंको देखकर कहने लगते

हैं कि इतनी जाति कैसे हो गई ? उन्हें इन जातियोंको देख कर घबराना नहीं चाहिये, क्योंकि जाति अनादि की हैं और उनके भेद बारह खरब हैं ।

यहा कोई शङ्का करे कि तुम जाति शब्दका कुल (वंश) अर्थ करते हो और उनकी संख्या बारह खरब बताते हो और शास्त्रमे यह देखा गया है कि मनुष्य जाति एक है । देखो प्रमाणमें—

मनुष्यजातिरेकैव विपाकान्नामकर्मणः ॥

(आदिपुराण पर्व ३६ श्लोक ३८)

अर्थ—मनुष्य जाति एक है नाम कर्मके उदयसे व्यापारके भेद से ४ भेद हैं ।

इस शङ्काका उत्तर ऐसा जानना कि जिस नामकर्मके उदयसे शरीरादिककी रचना होती है वह मनुष्य शरीरको बनानेवाला है, उसके उदयसे मनुष्य बन गया । परन्तु वह मनुष्य जाति एक है यहां जो मनुष्योंको जाति करके एक कहा गया है; तो जाति शब्द के दो अर्थ हैं "जाति. सामान्यजन्मना" इस कोषके प्रमाणसे जन्मका अर्थ कर लिया जाय तो वही बारह खरब भेद होते हैं, एक भेद नहीं बनता इंसलिये सामान्य अर्थ होता है तो क्या प्रयोजन हुआ कि मनुष्य सामान्य एक है जिन सबका यह लक्ष्य हैं कि व्यापार करके उदर पूर्ति करना । ऐसे व्यापाराभिलापियोंकी समुदाय रूप मनुष्य जाति एक है; परन्तु व्यापारके चार भेद होनेसे वह चार भेद रूप है । तो जहांपर मनुष्यजाति एक है , ऐसा कहा गया है उसका यहां प्रयोजन है कि मनुष्यत्व एक है । इसी भाव

को लेकर क्षत्रियत्वादि जाति कहा है, परंतु जब जाति शब्दका कुल (वंश) अर्थ होता है वहां विवाह जातिमें करना-विजातिमें नहीं यही प्रयोजन निकलता है। अन्यथा हम उन मनुष्य जातिको एक माननेवालोंसे पूछते हैं कि जब मनुष्य जाति एक ही है तो फिर उसमें चाहे जिसमें चाहे जिस रूपसे विवाह होने दो। प्रतिलोम रूपका निषेध करके शूद्रको ब्राह्मणकी कन्या लेनेका निषेध क्यों करते हो।

पाठक गण! जिस ग्रन्थका प्रमाण हम नीचे देते हैं उसमें तो शङ्कासमाधान पूर्वक सिद्ध कर दिया है कि कर्मोंके भिन्न २ कार्य हैं तथा उनमें किसीप्रकारकी एकता नहीं है। जैसी कि राजवार्तिक जीमें शङ्का की है कि तीर्थंकर जिसप्रकार एक नामकर्मकी प्रकृति का फल है, उसीप्रकार चक्रवर्ती वासुदेव-बलदेव गणधर इनकी प्रकृति भिन्न भिन्न क्यों नहीं कही? तब उत्तरमें कहते हैं कि गणधर तो श्रुतज्ञानावरणके कर्मके क्षयोपशमसे होते हैं और चक्रवर्ती आदि ऊंच गोत्रसे एवं तीर्थंकर होते हैं नामकर्मकी प्रकृतिसे देखिये—

यस्योदयादार्हन्त्यमचिन्त्यविभूतिविशेषयुक्तमुपजायते तत्तीर्थकरत्वं नाम प्रतिपत्तव्यं। गणधरत्वादीनामुपसंख्यानमिति चेन्नान्यनिमित्तत्वात्—यथा तीर्थकरत्वं नामकर्मोच्यते तथा गणधरत्वादीनामुपसंख्यानं कर्तव्यं—गणधरचक्रधरवासुदेवबलदेवा अपि विशिष्टर्द्धियुक्ताइति चेत्तन्न किंकारणं अन्यनिमित्तत्वात—गणधरत्वं श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमनिमित्तं चक्र-

धरत्वादीनि च उच्चैर्गोत्रविशेषहेतुकानि तदंत्रतार्थकरत्वस्यापी-
ति चेन्न तीर्थप्रवर्त्तनफलत्वात्।

(श्री राजवार्तिकजी अध्याय ८ सूत्र ११)

पाठक गण जो मनुष्योंकी एकही जाति समझते हैं वह नीचे लिखे प्रमाणको देखकर यह निश्चय कर ले कि मनुष्योंके ऊंचनीच भेद हैं और इन दोनोंके बारह खरब भेद हैं जिसमें खडेलवाल अग्रवाल आदि भेद हैं। प्रमाण देखिये --

गोत्रं द्विविधं, उच्चैर्गोत्रंनीच्चैर्गोत्रं-यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्मकारणं तदुच्चैर्गोत्रं तद्विपरीतं गर्हितेषु जन्मकारणं नीचैर्गोत्रं ॥

(श्री सर्वार्थसिद्धि अध्याय ८ सूत्र १२)

पाठकगण! आज मनुष्य विवाहकी भी दिल्लगी उड़ा रहे हैं और कहते हैं कि ये सामाजिक है धार्मिक नहीं।

समझमें नहीं आता कि सामाजिक क्या होता है और धार्मिक क्या? यदि त्रेपन क्रिया आदिपुराणजीकी हैं और गृहस्थीको करनी चाहिये यह आज्ञा है तब विवाह सामाजिक कैसे? और उस विवाहमें शास्त्रकी यह आज्ञा है कि कन्या अपनी जातिकी हो, फिर किस आधारसे भिन्न जातियोंमें विवाह करनेकी चेष्टाकी जा रही है? तब क्यों अनादिकालीन जातियोंको नष्ट कर जातिसंकरता फैलाई जा रही है? और विवाह-संस्कारको पानी दिया जा रहा है।

यहां कोई यह शङ्का करे कि त्रेपन क्रियाओंमें तो मुण्डन आशन

(बच्चेको अन्न खिलाना) वर्णलाभ (पितासे पृथक् होकर जुदा घर बसाना) आदि क्रिया हैं तो ये विवाहके समान सामाजिक हैं धार्मिक नहीं। इसका उत्तर यह है कि कोई मनुष्य स्वेच्छाचारीसे नियमपूर्वक कार्य न कर केवल उसके लाभपर दृष्टि दे तो वह कार्य धर्मरूप नहीं रहता।

जैसी कि वर्णलाभ क्रिया है, यहां कोई मनुष्य लड़ाई लड़के जुदा घर बसा ले या धनके लोभसे ऐसा काम कर ले तो वह वर्णलाभ क्रियाका फल, जो पितासे पृथक् होकर घर बसानेरूप था वह तो उसने कर लिया, परन्तु वर्णलाभ क्रिया ऐसी दशामें नहीं बनती। ठीक यही बात विवाह विषयमें है, विवाहका फल भोग और सन्तानोत्पत्ति है। मान लीजिये किसी मनुष्यने अपनी सहोदरासे भोग भोगकर पुत्र पैदा कर लिया या किसी जैनीने नाइनको रखकर लड़का पैदा कर लिया तो कहिये विवाहका फल हो गया या नहीं? परंतु यह विवाह संस्कार नहीं हो सकता। विवाह संस्कार जब ही होता है जब विवाह अपनी जातिमें अपने गोत्रको टाल कर किया जाय, इसके अतिरिक्त जितने विवाह होंगे वह भोगरूप हैं, धर्मरूप नहीं। भगवान् चन्द्र-प्रभ स्वामीके पूर्वजन्मकी कथामें राजा जयवर्माने अपनी कन्या शशिप्रभाकी सगाई अजितसेन चक्रवर्तीके साथ कर दी, तब धरणीधरने खबर भेजी कि तुम उसे न देकर मुझे दो अर्थात् अपनी पुत्रीके स्नेहसे घरमें आये हुए मनुष्यको पुत्री देना निश्चय कर लिया तो कर लो परन्तु उसकी जाति तो देख लेना आवश्यक है

जो वरमें देखनेकी ख़ास बात है। तुम्हारा पुण्य ही कारण है कि 'जिसकी जाति यानी कुल नहीं जाना गया ऐसे उसने नहीं विवाही इसलिये तुम मुझे अपने हाथोंसे दो जब तक मैं तुमसे हट नहीं करता। देखो प्रमाणमें—

विदधाति मतिं सुताविमोहाद् गृहजामातरि यद्यपीह कोऽपि।
अभिजातिरवश्यमेव तेनाप्यभिमृग्या ननु सा वरेषु मुख्या॥
भवती ननु पुण्यमत्र हेतुर्यदविज्ञातकुलेन तेन नोढा।
तदियं स्वकरेण दीयतां मे हठकारः क्रियते मया न यावत्॥

[श्रीचन्द्रप्रभचरित्र सर्ग ६ श्लोक ६३।६४]

अर्थ— कोई मनुष्य पुत्रीके स्नेहसे घरजमाईकी बुद्धी करता है तो उसे उसकी जाति अवश्य देख लेनी चाहिये क्योंकि जाति-का देखना वरमें देखनेकी एक ख़ास बात है। आपका पुण्य ही कारण है जो नहीं जानी है जाति जिसकी ऐसे उसने नहीं ब्याही तो उसे मुझे अपने हाथसे दो, जब तक मैं हठ नहीं करता।

पाठक! ध्यानसे विचारें कि यह कथा चन्द्रप्रभ भगवान्‌के जन्मकालसे भी पूर्वकी है कि वरमें जाति देखना ही मुख्य है। जिसका कुल न जाना गया हो ऐसेके साथ विवाह करना कदापि योग्य नहीं है।

आज हमने जिस ग्रन्थका प्रमाण दिया है वह सामान्य नहीं, किन्तु महर्षि वीरनन्दि स्वामीका बनाया हुवा महामान्य ग्रन्थ है, इसलिये शास्त्रोंपर जिनकी अचल श्रद्धा है वह कदापि नवीन सुधा-

रकमंडलीके खिलौना न बनेंगे। अनादिनिधन जातिसंगठनपर दृढ़ श्रद्धा रक्खेंगे।

यहां कोई यह शङ्का करे कि जब एक राजा जिस कन्याको चाहता है उसका वाक्य क्यों प्रमाण माना जाता है? वह ऋषि या आचार्य तो है ही नहीं, यदि प्रमाण ही माना जाता है तो जयवर्मा (कन्याके पिताका वाक्य) क्यों नहीं प्रमाण माना जाता? जिसमें वर कुलीन, अकुलीन दोनों कहे हैं। देखो प्रमाणमें—

कुलजोऽकुलजोथवास्तु सोस्मै न हि दत्ता तनया भवत्यदत्ता।
यदि कोपि बलाद् गृहीतुमीशस्त्वरितोभ्येतु विलम्बते किमर्थं॥

(चन्द्रप्रभचरित्र अध्याय ६ श्लोक ६६)

अर्थ—वह कुलीन हो या अकुलीन उसके लिये दी हुई पुत्री अब नहीं दी हुई नहीं हो सकती, यदि कोई बलसे लेना चाहता है तो शीघ्र मैदानमें आवे, देरी क्यों लगाता है?

पाठकगण! आप इस बातपर ध्यान दें कि जब कन्याके पिता ने अपनी कन्याकी एक पुरुषके साथ सगाई कर दी, जिसके कुल गोत्रकी परीक्षा सगाईके समय कर ली गई होगी जैसा कि माता पिता अपनी कन्याकी सगाईके समय विचारा करते हैं। उसके अनन्तर कोई मनुष्य बलसे उस सगाईको छुड़ा अपनेलिये मांगता है तो उसके पिताको कितना क्रोध आता है। ठीक यही बात यहां है। जयवर्मा क्रोधमें आकर उत्तर देता है कि मैंने जिसको कन्या दी है वह कुलीन, अकुलीन कैसा ही सही अब अन्यथा नहीं हो सकता, यदि बल है तो लड़ ले। इन क्रोधयुक्त

जयवर्माके वाक्योसे कोई यह सिद्धान्त निकाले कि वर कुलीन और अकुलीन दोनों प्रकारके हो सकते हैं, यह मिथ्या है। जिस जातिके पुरुषने विजातीय स्त्रीसे सम्बन्धकर सन्तान उत्पन्न कर ली वह विजातिसे उत्पन्न हुआ लडका मुनियोंको दान देनेका अधिकारी नहीं है। देखिये प्रमाणमे—

दुरभावअशुयसूदग पुप्फवईजाइसंकरादीहि।
कयदाणा वि कुपत्ते जीवा कुणरेपु जायंते॥
(श्री त्रिलोकसारजी गाथा ६१४)

अर्थ—खोटे भावकर वा अपवित्रता कर वा पितादिकके सूतक कर वा रजस्वला स्त्रीका संसर्ग कर वा परस्पर विपरीत कुल मिलनेरूप "जातिशंकरता" को आदि देकर संयुक्त जो दान करते हैं बहुरि जो कुपात्र विषे दान करते हैं ते जीव कुमनुष्यनिविषें उपजते हैं।

पाठको! उक्त लेखसे आपने जाना होगा कि जो भिन्न जातिकी स्त्रीसे संतान है वह दानकी अधिकारिणी नहीं, और यदि दे तो उसका पूर्णफल नहीं पासकती। इसका कारण क्या है यह विचारना चाहिये। शरीरपिंडमें जब एकही जातिका रज-वीर्य एकत्र होगा तब ही उसमे योग्यता होगी जो अभीष्ट है। वर्त्तमान में भी आम फलकी दो जातियोंकी एकतामें वह बात नहीं रहती जो पृथक्में है, इसी प्रकार दो योग्य जातियोंमें मोक्षमार्गकी जो योग्यता है वह भी योग्यता उनके पृथक् वीर्य-रजके सम्बन्धमें होगी, एकत्र करनेसे वह शक्ति भी नष्ट हो जाती है जो मोक्षमार्ग

की योग्यतावाली है। जैसा कि दो प्रकारके कलमसे लगाये हुए आममें उनके मिश्रणसे दोनों ही प्रकारकी शक्ति नहीं रहती किंतु एक तीसरे प्रकारका गुण आजाता है। उसीप्रकार राग भावोंकी अधिकतासे विजातिविवाह करके जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह उस गुणवाली नहीं रहती, अन्यथा क्या कारण है कि जिसकी जाति ठीक हो वह तो दानका पूर्ण फल प्राप्त कर ले और जाति-संकर दोषसे दूषित हो वह न कर सके। बस ! यही इसका उत्तर हो सकता है कि जिस विजाति-स्त्रीसे उत्पन्न हुई सन्तान है वह शरीरपिण्ड ही उसप्रकारकी योग्यता नहीं रखता जो उस पूर्ण फलको प्राप्त हो सके। बाह्य शरीरके सम्बन्धसे जिस-प्रकार आत्मापर उसका फल पड़ता है इसको कौन बुद्धिमान नहीं मान सकता ? जब कि शूद्र जिसका शरीर सन्तानक्रमसे इतनी योग्यता नहीं रखता कि वह मुनिव्रत धर सके, तो इसमें केवल आगमको प्रमाण माननेवाले यही कहा जायगा कि वह शरीर ही इस योग्यतावाला नहीं है जो उसमें मुनिव्रतकी योग्यता हो।

इसमें केवल बाह्यदृष्टिसे कोई यह निश्चय करना चाहे कि देखनेमें मोटा ताजा गोरा काला जैसा सज्जातिका रूप होगा वैसा शूद्र का न हो ऐसा तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधित है परन्तु समान समयमें कोई शूद्रका शरीर लम्बाई मुटाई या रूपादिमें न्यून हो ऐसा तो नहीं देखा जाता; कारण केवल यही है कि वह शरीर संतानक्रमसे जिस रजोवीर्यके सम्बन्धसे बना है वह मुनिव्रत आदि कार्योंकी योग्यता रखनेकी शक्ति ही नहीं रखता है। बाह्य

संबन्धसे आत्मापर उन गुणोंका प्रकाश या नाश संभव है, जो जिस संबन्धकी आवश्यकता रखता है। जैसे रजस्वला होनेपर स्त्रीके भाव पूजा दानादि कार्योंके लिये ग्लानिरूप हो जायेंगे। यदि किसी धीटताके साथ कोई उस कार्यको करेगी तो उसके हृदयमें वे भाव ही नहीं हो सकते, जैसे कि प्रत्यक्षदर्शियोंने कहा है। वही स्त्री जब रजस्वलादि दोषोंसे मुक्त होगी तब वह उन्हीं दानादि भावोंको प्राप्त हो सकेगी। ठीक यही व्यवस्था शरीरकी योग्यता अयोग्यता पर निर्भर है कि उसकी शुद्धिसे मोक्षमार्ग और अशुद्धिसे संसार। शरीरकी शुद्धि शरीरके कारणभूत रजो-वीर्यकी शुद्धिसे है, इसीका नाम सज्जाति है जिसको परमस्थानों-की आदिमें माना है, और जिसका प्रमाणस्वरूप महापुराणजी मौजूद हैं। पाठक ध्यान दें कि एक कविने अलङ्कारूपमें वर्णन करते हुए कहा कि राजा जब दिग्विजय करनेको उठा है, तब अन्य राजाओंने राजाके भयसे भागकर समुद्रके समीपवर्त्ती पृथ्वीका आश्रय ले लिया और वहां जाकर छिप गये। फिर राजा जब समुद्रकी दिग्विजयको आया, तब समुद्रने अपनी कन्या लक्ष्मीको उसही राजाके साथ विवाह दिया। यहां अलङ्कारमें (श्लोकमें) गोत्र शब्द है, जिसका अर्थ है समुद्रकी समीपवर्त्ती पृथ्वी, दूसरा अर्थ है जातिका विशेष गोत्र। तब कवि क्या भाव निकालता है कि जब अन्य राजागणोंने समुद्रके पासकी पृथ्वी यानी गोत्र-धारण कर लिया तो उस समुद्रकी कन्याके वे राजागण समान-गोत्री हो गये, फिर वह लक्ष्मी (समुद्रकी कन्या) उन समान

गोत्रवाले राजाओंके साथ विवाह नहीं कर सकती है इसलिये उसने उस दिग्विजय करनेवाले राजा (जो भिन्नगोत्री था) के साथ विवाह कर लिया। इस अलङ्कारने किस प्रकारका आगमका एक सिद्धान्त पुष्ट किया है, जिसे विजातिविवाहवाले विचारें। देखो प्रमाणमें—

अन्येभियोपात्तपयोधिगोत्राः क्षोणीभुजो जग्मुरगम्यभावं।
लक्ष्मीस्ततो वारिधिराजकन्या तमेकमेवात्मपतिं चकार॥
(धर्मशर्माभ्युदय सर्ग ४ श्लोक २८)

अर्थ—अन्य राजागण उस राजाके भयसे ग्रहण किया है समुद्रका गोत्र जिन्होंने, वे समुद्रके किनारे छिप गये। फिर समुद्रकी कन्या लक्ष्मीने उस राजाको ही अपना स्वामी बना लिया।

पाठकगण! शास्त्रकारने इस सिद्धान्तको किस युक्तिसे विचारपूर्वक निर्णय किया है जिसका आप मनन करें। यह बात आज कुछ नवीन नहीं है, किन्तु जिनकी बुद्धिपर काग्रेसकमेटीका राज्यप्रलोभन स्थान कर गया है; या समाजियोंकी संगतिसे जिनके हृदयमें हेयाहेयका विचार नहीं रहा है, उनको यह शास्त्रीय प्रमाण चाहे प्रमाणाभास जंचे, परन्तु वास्तवमें यह प्रमाण बडे महत्त्वका है जिसपर बड़े विवेचनकी आवश्यकता है।

पाठकगण! यहा कोई शंका करे कि जाति अनादि नहीं है किन्तु पूर्व पुरुषोंने ग्रामोंके नामसे कुलोंकी रचना रच दी है; जैसे कि खंडेलवाल-खंडेलेके और अग्रवाल अगरोहेके, डीसाके डीसा-

वाल आदि—सोई नीतिसारमे कहा भी है कि "ग्रामाद्यभिधया कुलं"

पाठकगण ! ऐसी शङ्काऐं जो उठाते हैं या उठाया करते हैं: उन मनुष्योंका केवल भोली जनताको बहकानेके सिवाय अन्य कुछ प्रयोजन नहीं है। हम जिस श्लोकके अक्षरोंसे यह बात कही गई है उन श्लोकोंको ज्योंका त्यों दिखाकर उसका उत्तर देते हैं। देखो प्रमाणमे—

> भरते पञ्चमे काले नाना संघरामाकुलं।
> वीरस्य शासनं जातं विचित्राः कालशक्तयः॥
> स्वर्गगेतेविक्रमांके भद्रवाहौ च योगिनि।
> प्रजाः स्वच्छन्दचारिण्यो बभूवुः पापमोहिताः॥
> यतीनां ब्रह्मनिष्ठानां परमार्थविदामपि।
> स्वपराध्यवसायत्वमाविरासीदतिक्रमं॥
> तदा सर्वोपकाराय जातिसंकरभीरुभिः।
> महर्द्धिकै परं चक्रे ग्रामाद्यभिधया कुलं॥
>
> (नीतिसार श्लोक २।३।४।५)

अथ—(१) इस भरतक्षेत्रके पांचवे कालमे अन्तिम तीर्थंकरका शासन अनेक मतोंकर युक्त होगया। समयकी शक्ति विचित्र है।

(२) राजा विक्रमादित्य और भद्रबाहु स्वामीको स्वर्ग गये पीछे प्रजा स्वेच्छाचारी और पापरूप हो गई।

(३) परमार्थको जाननेवाले ब्रह्मज्ञानी यतियोंकी भी वृत्ति भ्रष्ट हो गई।

(४) तब सब जीवोंके उपकारके लिये उस समयके मुखिया

लोगोंने जातिसंकरके भयसे ग्रामोंके नामपर कुलोंकी रचना की। पाठकगण! ध्यान दें। जब भरतक्षेत्रमें पापकी अधिकता हुई, ऋषि मुनियोंका अभाव होनेलगा और मनुष्य स्वेच्छाचारी व्यभिचारी होने लगे, तब उस समयके नेता पुरुषोंने जाति [वंश] की सत्ता रखनेको अर्थात् मनुष्य "जाति-संकर" न हो जांय इस भयसे ग्रामोंके नामपर कुल रचे।

कहिये? इससे कितनी बड़ी पुष्टि होती है कि पूर्व जातियां थीं और उनको संकर नहीं किया जाता था, अर्थात् जिस जिस जातिका जो जो विवाह आदि कर्म था वह वह उसी रूपसे किया जाता था। जब यह मार्ग भ्रष्ट होने लगा तब मुखिया पुरुषोंने उस जातिव्यवस्थाको संरक्षित रखनेको गावोंके नामपर कुलोंकी रचना की। यहां ऐसा करना जातिरक्षाके लिये है। संभव है उस समयके अनुसार कोई नाम पलटा हो, परन्तु है उसका प्रयोजन जातिरक्षा। यही हम कहते हैं कि यह खंडेलवाल जाति तबही जातिसंकर नहीं हो जब उनका इनके साथ विवाहसंबंध है, अन्यथा जातिसंकर होनेमें क्या कसर है? क्या शहरमें रहनेसे जातिसंकर होता है या काले गोरेपनेसे संकरता है? समझमें नहीं आता कि क्या मुआमला है, जो स्पष्ट बातोंमें भी सन्देहों की और शङ्काओंकी थैलियां खुल रही हैं। देखिये प्रमाणमें—

आर्याम्लेच्छाश्च ३।३६

गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्ते इत्यार्याः। ते द्विविधाः ऋद्धिप्राप्ताय अनृद्धिप्राप्तार्याश्चेति अनृद्धिप्राप्तार्याः पञ्चविधाः क्षेत्रार्याः जात्यार्याः

कर्मार्या दर्शनार्यश्चारित्रार्याश्चेति । ऋद्धिप्राप्तार्या सप्तविधाः। बुद्धिविक्रियातपोबलौपधरसाक्षीणभेदात् । म्लेच्छा द्विविधाः अन्तरभूमिजाः कर्मभूमिजाश्चेति ॥

(सर्वार्थसिद्धि अध्याय ३ सूत्र ३६)

मनुष्य दो प्रकारके हैं, एक आर्य दूसरे म्लेच्छ । म्लेच्छ दो प्रकारके हैं एक अंतर्भूमिज १, जोहिमवन आदि पर्वत समुद्रमें गये हैं, वहां मनुष्यकेसे आकारके और मुख वद्र गौ आदि जानवरोका सा है। दूसरे कर्मभूमिज, जो म्लेच्छ खंडोमें, शक-यवन आदि भेदोंसे अनेक प्रकार हैं।

इसी प्रकार आर्य भी दो प्रकार हैं। एक ऋद्धि प्राप्त-आर्य, जो बुद्धि, विक्रिया, तप, वल, औषध, रस, अक्षीण भेदसे सात प्रकार हैं। इन सात प्रकारके ऋद्धिधारक आर्योंमें जो जिस ऋद्धिको यथायोग्य धारण कर सकता है, वह ऋद्धिधारक आर्य कहा जा सकता है। कोई मनुष्य जातिका यवन हे परन्तु है वह ज्ञानसे बहुत वढ़ा हुआ, तो वह ज्ञानसे बुद्धिकृत आर्य अवश्य कहायगा। वहां उसकी जातिकी परीक्षा न होगी। तथैव कोई मनुष्य पहलवान है, वह बलके द्वारा पहलवान है अर्थात् बलसे मान्य है, और इस विषयमें इसमें उसकी कोई जातिकी आवश्यकता भी नहीं है। लौकिकमें भी पहलवान वही कहाता है जो पहलवानी करता है, चाहे वह ब्राह्मण हो या जाट, इसीप्रकार अन्य जान लें।

दूसरे आर्य हैं अनृद्धिप्राप्त, जिनके पांच भेद हैं।

क्षेत्रार्य १, जात्यार्य२, कर्मार्य ३, दर्शनार्य ४, चारित्रार्य ५ ।

(क) क्षेत्रार्य, वे कहे जाते हैं कि जो आर्यक्षेत्रमें उत्पन्न हुए हैं जैसे—हिन्दुस्थान, विलायत आदि देश आर्य देश हैं। इनमें रहने-वाले सब मनुष्य क्षेत्रार्य कहावेंगे, आर्यक्षेत्र विजयार्द्धसे दक्षिण गंगाके पश्चिम, और सिन्धुके पूर्व तथा लवणसमुद्रके उत्तरके सब देश आर्य हैं, इनमें उत्पन्न हुए सब मनुष्य क्षेत्रआर्य हैं।

(ख) जात्यार्य—वे हैं जो सनातन श्रेष्ठ जातिकी संतानमे सनातनरूपसे उनकी संतान प्रतिसंतान चली आ रही है, ऐसे श्रेष्ठ कुलोंकी संतान जात्यार्य है।

(ग) कर्मार्य—वे हैं जो असि मसि आदि षट्कर्म (सावद्य कर्म) करते हों। तथा एक असावद्यकर्म (मुनियोंका आचार) पालते हों।

(घ) दर्शनार्य—वे हैं जो सम्यग्दर्शनको प्राप्त हो गये हो।

(ङ) चारित्रार्य—जो श्रावकाचार तथा मुनिआचारको धारण करें।

पाठको! इन पांच प्रकारके आर्योंमें नीची जातिका मनुष्य क्षेत्रार्य भी हो सकता है क्योंकि वह आर्य क्षेत्रमे उत्पन्न हुआ है जैसा कि ऊंची जातिवाला हुआ है, वैसा ही आर्यक्षेत्रमे नीच जातिवाला हुआ है, अतः क्षेत्रार्य तो दोनों ही है।

कर्मार्य—जो अपनी योग्यतानुकूल अर्थात् मुनिकर्मको छोड शेष असि-मसि आदि कर्म सब ही कर सकते हैं और करते हैं। इसप्रकार कर्मार्य भी दोनों प्रकारके ऊंचगोत्री तथा नीचगोत्री हो

सकते हैं। इसीप्रकार सम्यक्त्वकी प्राप्ति भी ऊंच, नीचगोत्री कर सकते हैं, अतएव दर्शनार्य भी दोनो हो सकते हैं।

इसी प्रकार सकल चारित्रको छोडकर गृहस्थ चारित्र दोनों ही प्रकारके ऊंच नीचगोत्री धारण कर सकते हैं, इसलिये चारित्रार्य भी दोनों हो सकते हैं।

अब रहे जात्यार्य सो, जात्यार्य वही हो सकते हैं जो श्रेष्ठ-कुलकी सन्तान प्रति संतान हैं, इनमें नीचगोत्रकी संतान प्रति-सन्तान ऊंचगोत्री न होंगी।

पाठक महाशयो! अब इन ५ प्रकारके आर्योंमें केवल "जात्यार्य" जिसकी संज्ञा है वही मनुष्य ऊंच गोत्रकी सन्तान प्रति संतान होगा, वही सज्जातिवाला कहायगा, वही सात परम स्थानोंमें आदिका परम स्थानीय है, और वही मोक्ष मार्गका अधिकारी है, जिसको शास्त्र महापुराण पुकार पुकार कर कह रहा है।

यहां थोड़ासा यह विचार करलेना योग्य है कि जब आर्यक्षेत्र नियत है जो उस आर्यक्षेत्रमें अच्छे बुरे कर्म करे वह कर्मार्य हो जायगा, फिर अब किस बातकी त्रुटि रही? यदि कहें कि सम्यग्दर्शन और चारित्रकी, सो वे जुदे २ कहे ही हैं; फिर मोक्ष होनेमें किस बात-की त्रुटी? उत्तर यही होगा कि इन सब बातोंको प्राप्त हो कर भी मनुष्य मोक्षका अधिकारी नहीं हो सकता, क्योंकि यदि वह श्रेष्ठ जाति की (जिन जातियोंकी अनादिकालसे सत्ता है उन जातियोंकी) संतान नहीं है तो वह कदापि मोक्षमार्गी नहीं, और

न लोकपूजित कुलवाला कहा जासकता है। कुलकी पूज्यता केवल अच्छे बुरे कर्मोंसे नहीं है। जो एक बड़ा कुल "इक्ष्वाकु" था जिसमें स्वयं आदि ब्रह्माने जन्म लिया था और मुक्ति प्राप्तकी थी, उसीमे उनके पौत्र मारीचकुमार भी हुए, जिन्होंने मिथ्यात्वका प्रचारकर आप संसारमें डूबे तथा औरोंको भी डुबाया। कहिये इससे भी क्या कोई बुराकर्म हो सकता है ?

अब विचारना चाहिये कि मारीचकुमारको जो संतान प्रतिसतान होगी वह कैसी होगी ? तथा वे स्वयं भी ऐसे कुकर्मी कैसे हुए ? तो क्या अब इक्ष्वाकु कुल श्रेष्ठ न रहा ? या यह भी नियम है कि इक्ष्वाकुकुलमें सब मोक्षमार्गी हुए हों ? यदि नरकगामी भी हुए तो फिर भी क्या कोई कुल इस बातकी ठेकेदारी कर सकता है कि उसमें उत्पन्न हुए सब श्रेष्ठकर्मी ही हो ?

पाठकगण ! यहा यह बात विचारणीय है कि ऊंच कुलमे जो उत्पत्ति हुई है वह जन्मान्तरीय पराई निंदा आदि न करने रूप पुण्योदयसे हुई है, जिसके फलस्वरूप इस जन्ममें श्रेष्ठकुलकी प्राप्ति हो गई कि जो श्रेष्ठ कुल मोक्षप्राप्तिका ठेकेदार है, क्योंकि बिना श्रेष्ठकुलके जिस मोक्षकी प्राप्ति ही असंभव है। यदि कोई मनुष्य श्रेष्ठ कुलको प्राप्त हो कर नीचकर्म करता है तो वह आगामीके लिये पाप कर्मका बंध करता है, जिसका फल नरक नीचगोत्र आदिमे जन्मलेना है। यह नहीं हो सकता कि कोई ऊंचगोत्री नीच कर्म करे तो उसी भवमें नीचगोत्री हो जावे। अवश्य ही कर्मसे तो वह नीच गिना जायगा, परन्तु जातिसे वह

नीच जातिका नही कहा जायगा। जिस जन्मान्तरीय शुभ कर्मके उदयसे उसका शरीर बना है, वह शरीर ऊंचगोत्रीय रजोवीर्यके सम्बन्धसे है, अतः वह शरीर अपनी आयु पर्यन्त ऊंच ही रहेगा। उसका इस जन्मका किया हुवा नीचकर्म आगेके जन्मका कारण होगा। यह नहीं हो सकता कि इस जन्ममें ही नीच कर्मकरनेसे उसका ऊंचगोत्र भी नष्ट हो जावे। जैसे कि कोई मनुष्य ऐसे नीच कर्म कर रहा है कि जिसके फलसे वह नरक जाय, तो क्या उस मनुष्यके इस पर्यायमें ही नरकपर्याय आगई या क्या मनुष्य-पर्याय नष्ट हो गई? तो कहना होगा कि जिसप्रकार श्रेष्ठकर्म करनेसे जीवको मनुष्यपर्यायकी प्राप्ति हुई, उसीप्रकार श्रेष्ठकर्म करनेसे ऊंचगोत्रकीभी अब रहा जीवोंके इस जन्मके भले बुरे कर्मों का फल वह आगामी पर्यायमे प्राप्त होगा। बस! यही सिद्धान्त मारीचकुमारके लिये अथवा अन्य श्रेष्ठ कुलाके लिये है। जिस मारीचकुमारके जीवने जन्मान्तरमें पुण्य किया उसके फलसे इक्ष्वाकु वंशमें जन्म प्राप्त हुआ, और उनकी संतान भी आर्य होगी। अब रहा उनका इस जन्ममे किया हुवा मिथ्यात्व आदिका प्रचार, उससे वह नरकादिकके पात्र हुए तो उनका फल जन्मान्तरमें प्राप्त होगा।

सारांश यह है कि उच्चगोत्रकी संतान ऊंच होगी और वह श्रेष्ठ कर्म करेगी तो उसका फल श्रेष्ठ पायगी, यदि नीचकर्म करेगी तो नीच फल पावेगी परन्तु यह नहीं हो सकता कि ऊंचगोत्री बुरे कर्म करे तो उसका ऊंच गोत्र ही नष्ट हो जावे, किन्तु उसका

फल अवश्य बुरा होगा। चाहे इस जन्ममे भोगा जाय चाहे पर-जन्ममें।

रही नीच जाति सो वह दूसरे जन्ममे ही प्राप्त होगी। हमारे बहुतसे भाई इस बातकी शंका किया करते हैं कि भरत महाराज ने म्लेच्छखण्डके राजाओंकी बत्तीस हजार राजकन्याओंसे विवाह किया, इससे विजातिविवाह सिद्ध हो गया। यहां हम पाठकोंको यह समझावेंगे कि "कोई मनुष्य कोई कार्य करता है तो वह सबको करना चाहिये ऐसी शास्त्रकी आज्ञा नहीं है" जैसा कि पांडवोंने जूवा खेला, तो क्या जूवा सबको खेलना चाहिये ?

इसीप्रकार भरतने जब म्लेच्छखण्डके राजाओंकी कन्यायें विवाहीं तो क्या विजातिविवाह योग्य हो गया? नहीं, शास्त्र की आज्ञा जो सबके लिये कर्त्तव्यमार्ग बताती है, वही आदेय है। किसी मनुष्यने अपने तीव्र राग परिणामोंके कारण कोई अयोग्य कार्य कर लिया तो क्या वह कर्त्तव्यमार्ग हो गया? नहीं, जिनके परिणाममें नीचेको लुढ़कना अभीष्ट है वे नीच बातोंकी खोजमें लगे रहते हैं। भरतजीने जिसप्रकार शीघ्रतासे केवलज्ञान प्राप्त कर लिया उसप्रकार सर्वज्ञता प्राप्त करनेका प्रयत्न क्यों नहीं किया जाता?

दूसरी बात यह भी है कि एक चक्रवर्ती राजाका यह अनादि-कालीन नियोग भी है जो उसीके लिये है। चक्रवर्तीके अतिरिक्त तो कोई मनुष्य ऐसा कर भी नहीं सकता, तथा चक्रवर्ती भी

जब म्लेच्छ खंडोंके राजाओंकी कन्या लाता है तो इस देशके जो नीच मनुष्य हैं उनकी कन्याओंको क्यों नहीं विवाहता?

परन्तु एकमात्र चक्रवर्तीके नियोगरूप है. इससे कोई मनुष्य यदि अन्य प्रकारके साध्यकी सिद्धि करता है तो मानो वह एक भोले पुरुषको धोखा देता है। यदि चक्रवर्तीके इस नियोगी कार्य-से विजाति-विवाहको सिद्धि की जाती है तो हम यह बात कहेंगे कि विजातिविवाहसे उत्पन्न हुई सन्तान पिताकी उत्तराधिकारी क्यों नहीं होती? विजातिविवाही स्त्री दान, यज्ञ हवन आदिमें पति की साथिनी क्यों नहीं होती? जब इतना अन्तर है तो आज कौन मनुष्य धर्मपत्नीसे तो सन्तान उत्पन्न करनेको सजाति विवाह कर रहा है और कौन विजाति स्त्रीको भोगपत्नी बना रहा है? वर्तमान समयमें तो केवल एक स्त्री जो अपनी वंशस्थितिको विवाही जाती है वह ही विवाही जाती है, यदि विजातिकी विवाहली जायगी तो धनका अधिकारी कौन होगा? पूजा प्रतिष्ठादिमें किस स्त्रीको पास विठाया जायगा? परन्तु इन सब बातोंका विचार किसको है? वहां तो यह सिद्धान्त है कि जब चाहे जैसे अधर्मके कार्य करेंगे और कोई रोकेगा तो उसकी सुनेंगे नहीं। और रहे लड़का लड़की व्याहने, सो यहां नहीं तो दूसरी जगह व्याह लेंगे। क्योंकि जातिभेदसे तो कोई मनुष्य देखता भी है कि यह कहांका है और किस जातिका है? जब कुछ भेद ही न रहेगा तो विदेशोंमें कौन पूछेगा, बस यही अधर्मकी जड़ बनेगा, और यही कलियुगी गुरुओंकाका सिद्धान्त है।

पाठकगण ! जाति कोई चीज नहीं है, ऐसा माननेवाले विचारें, कि यदि जाति कुछ चीज न होती तो जिसने एक वार दत्तक पुत्र (गोदका) लिया और वह मरगया तो वह धन किस प्रकार खर्च किया जाय ? इसका प्रमाण जो नीचे दिया जाता है उससे जातिकी सत्ता कितनी प्रवल प्रमाणित होती है। देखिये प्रमाणमें—

सुतासुतः सुतात्रीयः भागिनेयेभ्य इच्छया।
देयाद्धर्मथजामात्रे रन्यस्मैऽवा जातिभोजने॥

(भद्रवाहुसंहिता दायभागे श्लोक ५६)

अर्थ—वह द्रव्य दोहिता, दोहिती, भानजा, जमाईको दे अथवा जातिके भोजनमें या धर्मकार्यमें लगादे। यदि जाति कोई वात न होती तो उस धनके जाति-भोजनमें लगानेकी आज्ञा क्यों होती ?

पाठकवर्ग ! आज जो प्रवृत्ति खंडेलवाल अग्रवाल आदि जातियोंमें पुत्र गोद रखनेकी है वह यही है कि अपनी २ जाति-ही का पुत्र अपनी २ जातिवाले रख सकते हैं। यथा खंडेलवाल कोई पुत्र रक्खेगा वह खंडेलवाल जातिके उत्पन्न हुए वालकको ही रक्खेगा, अन्य जातिके वालकको नहीं। यदि जाति कोई भेद न होता तो यह पृथा क्यों होती ? और शास्त्र क्यों इसके साक्षी होते ? देखिये—

प्राप्नुयाद् विधवा पुत्रं चेद् गृह्णीयात्तदाज्ञया।
तद्वंशजं स्वलघुं सर्वलक्षणसंयुतं॥

(भद्रवाहुसंहिता दायभागे श्लोक ११६)

अर्थ—विधवा स्त्री यदि सासु ससुरकी आज्ञासे पुत्र गोद रखना चाहे तो वह अपने वंशका और आयुमें अपनेसे छोटे और सब गुण सहित को ले।

पाठकवर्ग! निम्नलिखित दायभागके प्रमाणसे गोत्र और जातिकी कल्पना आधुनिक है या अनादिकी, इसका विचार पाठक स्वयं करें।

जब कोई पुरुष मरे तो उसके धनके स्वामी किस प्रकार हों, इसको दिखाते हैं। देखिये—

पत्नीपुत्रो भ्रातृजाश्च सपिण्डस्तत्सुतासुत।
बान्धवो गोत्रजो ज्ञात्या द्रव्येशा ह्युत्तरोत्तरम्॥
तदभावे नृपो द्रव्यं धर्मकार्ये प्रवर्त्तयेत्।
निष्पुत्रस्य मृतस्यैव सर्वत्रायन्त्वय क्रमः॥

(वर्द्धमान नीति-दायभागे श्लोक ११।१२)

अर्थ—पहले स्त्री, दूसरे पुत्र, तीसरा भतीजा, चौथा सात पीढ़ी तकका वंशज, पाचवा दोहिता, छटा कुटुम्बी, सातवां अपने गोत्रका, आठवा अपनी जातिका क्रमसे धनके स्वामी होते हैं, इनके न होने पर राजा धनको धर्म कार्यमें लगादे।

यदि गोत्र और जातिभेद न होते तो धनके स्वामी ये मनुष्य कैसे होते? और दायभागकर्ता क्यो ऐसे लिखते? जिसप्रकार ये प्रमाण हैं उसही प्रकार निम्न लिखित प्रमाण हैं।

अण्णोइ कोइ वन्धुवि सुगोयजो जाइजोहु दव्वेण।
तस्स विलोयप्रमाणं एइमसाणं हवेइ जंपंतं॥

(इन्द्रनंदि संहिता-दायभागे श्लोक ३७)

अर्थ—अन्य कोई भाई न होवे तो गोत्रका मनुष्य स्वामी हो, यदि वह भी न हो तो जातिका मनुष्य स्वामी हो राजा या लोकप्रमाणसे यह बात होती है। इसही प्रमाणके अनुसार निम्नलिखित प्रमाण है।

पत्नीपुत्रश्च भ्रातृव्याः सपिण्डश्च दुहितृज.।
बन्धुजो गोत्रजश्चैव स्वामी स्यादुत्तरोत्तरं॥
तदभावे च जातीयास्तदभावे महीभुजाः।
तद्धनं सफलं कार्यं धर्ममार्गप्रदाय च॥

(श्री अर्हन्नीति—दायभागे श्लोक ७४।७५)

अर्थ—पहले स्त्री; दूसरा पुत्र, तीसरा भतीजा, चौथा सात पीढ़ी तकका वंशज, पांचवां दोहिता, छटा वंशवाला पुरुष, सातवां गोत्रका, आठवां जातिका क्रमसे धनके स्वामी होते हैं, इनके न होनेपर राजा उस धनको धर्मकार्यमें लगादे।

जैन सिद्धांतमें कर्म आठ हैं और उनका पृथक २ फल है। किसी कर्मके साथ किसी कर्मका संबंध नहीं है, परन्तु सुधारक-पार्टी किसी कर्मके कार्यमें किसी कर्मका साथ रखकर उसको मटियामेट करना चाहती है, यह उसकी अनभिज्ञता या छल है। देखो प्रमाणमें—

ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः॥

(श्री तत्वार्थसूत्र अध्याय ८ सूत्र ४)

अर्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम गोत्र, अन्तराय ये ८ कर्म हैं। पाठकवर्ग! विचारना चाहिये कि

ज्ञानावरणके संबंधसे आत्मामें ज्ञानकी न्यूनाधिकता होगी। जिस मनुष्यका जैसा ज्ञानावरणका तीव्र मन्द उदय होगा उसका वैसा ज्ञान होगा। यहा कोई ऐसा तर्क करे कि कोई मनुष्य देखनेमें अच्छा मोटा ताजा है वर्ण भी गोरा है तो वह बुद्धिमान् भी विशेष होगा, यह निश्चय नहीं हो सकता क्योंकि श्रेष्ठ शरीरका बनना नाम कर्मका कार्य है और ज्ञानकी विशेषता होनी है ज्ञानावरण कर्मके मंद उदयसे।

इसीप्रकारसे गोत्र कर्मका कार्य है ऊंच गोत्रमें जन्म लेना। उसमें ऊंच गोत्र वही है जो ऊंच गोत्रकी धारावाहिकरूपसे संतान है। नीचगोत्रके उदयसे नीचकुलमें जन्म होता है अर्थात् नीचकुल नीचकी संतान होती है। तब यहा यदि कोई कहे कि जो शरीरसे मोटा ताज़ा और रंगसे भी अच्छा हो वह ऊंचगोत्री हो तो उसकी यह तुक नहीं बन सकती, क्योंकि शरीरका अच्छा होना नाम कर्मका कार्य है और ऊंच कुलकी संतानमें जन्म लेना ऊंच गोत्रका कार्य है। तब यहां कोई यह मिलान करे कि शरीर-धारी तो सबही हैं सो शरीर तो नाम कर्मके उदयसे सबको ही होगा तो क्या शरीरधारित्वेन "मनुष्य जाति एक ही है" यह सिद्धान्त ठीक नहीं है? तो हम उससे पूछेंगे कि यदि मनुष्य देखनेमें सब एकसे हैं तो गोत्र कर्म क्या कार्य करता है? बस इसीका मनन करना चाहिये और इस गोत्र कर्मके भेदमें जो ऊंच गोत्रका मनुष्य है वही सज्जाति है और वही मोक्षका अधिकारी है। यह नहीं हो सकता कि नीचगोत्री अच्छा मोटा ताज़ा रंगसे भी अच्छा हो तो मोक्षका अधिकारी हो जावे।

पाठकगण ! जो मनुष्य जातियोंको हजार दो हजार वर्षसे चली हुई मानते हैं, उन्हें इस नीचे लिखे महामान्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्तिविरचित त्रिलोकसारजी पर दृष्टि देनी चाहिये कि, यदि वे कुल-वंश (जाति) मर्यादा आधुनिक होती तो २४ तीर्थंकरोंका जन्म क्यों ५ वंशोंमें हुआ लिखा है ? परंतु जिन्हें जाति-मर्यादाको नष्ट करना ही अभीष्ट है, उनकी ऐसे प्रमाणों पर क्यों दृष्टि पडने लगी ? देखो—

पासोदु उग्गवंशी हरिवंशो सुवओ णिणेमीशो।
धम्मजिणो कुन्थुअरा कुरुजाइकवाइया सेसा॥
(त्रिलोकसारजीकी गाथा ८४६ वीं)

अर्थ—तेईसवें तीर्थंकरका उग्रवंशमें जन्म हुवा, बाईसवें और बीसवें तीर्थंकरका हरिवंशमें, और पंद्रहवें और सत्रहवेंका कुरुवंशमें बाकीका इक्ष्वाकु वंशमें जन्म हुआ।

पाठकगण ! आज हम एक ऐसे ग्रन्थका प्रमाण देते हैं जिसमें कन्या कैसे वरको देनी चाहिये, इसका निरूपण किया है। वह ग्रन्थ है पं० मेधावीजी विरचित "धर्मसंग्रहश्रावकाचार" श्लोक २०२ वां।

कुलजातिक्रियामन्त्रैः स्वसमाय सधर्मणे।
भूकन्याहेमरत्नाश्वरथहस्तादि निर्वपेत्॥

अर्थ—कुल जाति क्रिया मंत्र करके जो अपने तुल्य है ऐसे साधर्मीको पृथ्वी कन्या सुवर्णादिक देना चाहिये। यहां स्पष्ट शब्दोंमें कहदिया है कि जिसका कुल, जाति समान हों अर्थात्

अपनी जातिका हो उसे अपनी कन्या देनी चाहिये, क्योंकि ऐसे पुरुषोंको दी हुई कन्या उसकी धर्मपत्नी होगी, जिससे उसके यज्ञ दान आदि सब कार्य सफल होंगे, क्योंकि बिना धर्मपत्नीके पात्र दानादि निरर्थक हैं। सोई दिखाते हैं—

धर्मपत्नीविना पात्रे दानं हेमाथिकं मुधा।
कीटैर्भुज्यमानेन्तः कोम्भ सेकाद् गुणो द्रुमे॥
(धर्मसंग्रहश्रावकाचार श्लोक २०७)

अर्थ—धर्मपत्नीके विना पात्रदान निरर्थक है। जैसे कि कीड़ोंसे खाये हुए वृक्षको जलसे सींचना।

अब पाठक निश्चय करें कि, पं० मेधावीजी मनुष्योंके सबही लौकिक पारलौकिक कार्योंको विना धर्मपत्नीके निरर्थक बनाते हैं, और वह धर्मपत्नी विजातिविवाहसे नहीं हो सकती।

यहां कोई यह शङ्का करे कि पं० मेधावीजीने तो साधर्मीको कन्या देना कहा है फिर यह कैसे मानाजाय कि सजातीयको कन्या देना? देखो प्रमाणमें—

आधानादि क्रियामन्त्रव्रताद्यच्छेदवांछया।
प्रदेयानि सधर्मेभ्यः कन्यादीनि यथोचितं॥
(धर्मसंग्रह श्रावकाचार श्लोक २।५७)

अर्थ—गर्भाधान आदिक क्रियाओंके मंत्र व्रत आदिकोंके नाश न होनेके भावसे कन्या आदिक साधर्मीको यथायोग्य देनी चाहिये।

पाठकगण! इस शङ्काका उत्तर इसप्रकार है कि पं० मेधावीजी कन्या साधर्मीको देनेकी आज्ञा किस प्रकार देते। जैनधर्मको धारण करनेवाले सबही साधर्मी कहाते हैं. और जैनधर्म पशु पक्षी भी धारण कर सकते हैं और शूद्र भी धारण करता है। क्या जैनधर्म धारण करनेवाला शूद्र साधर्मी नहीं है तो क्या इनको कन्या दे देनी चाहिये? परन्तु यहां जो साधर्मीको देनेकी आज्ञा दी है, उसमें यह विशेषण लगा हुआ है कि "यथोचितं" यथायोग्य देनी अर्थात् समान जातिकेको देनी। यदि यह बात उन्हें अभीष्ट नहीं होती तो उसने पहले श्लोक २०२ में ये क्यों कहते कि जिनका कुल जाति समान हो, ऐसे साधर्मीको देना। यदि ये बात न मानी जाती तो 'विरोध" दोषसे दूषित पं० मेधावीजीका वाक्य ठहरता है परन्तु उनका वाक्य किसी प्रकारसे भी दूषित नहीं है। एक स्थानमें तो समान कुलवाले साधर्मीको देनेकी आज्ञा है, दूसरे स्थानमें साधर्मीको। परन्तु "यथोचित" विशेषणसे यहां पूर्व अर्थ सजातीय साधर्मीका आता है, जिससे विरोध नहीं है। अन्यथा "यथोचित" शब्द व्यर्थ पडता है। यहां कोई दूसरी यह शङ्का करे कि पं० आशाधरजी समान जातिवालों में विवाह नहीं कहते, किन्तु त्रिवर्णोंका (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंका त्रिवर्णोंके साथ विवाह होना है, शूद्रोंके साथ नहीं, और शूद्रोंका शूद्रोंके साथ होना है, ऐसा कहते हैं। देखो प्रमाणमें—

परस्परं त्रिवर्णानां विवाहः पङ्क्तिभोजनं।
कर्त्तव्यं न च शूद्रैस्तु शूद्राणां शूद्रकैः सह॥
(धर्मसंग्रह श्रावकाचार श्लोक २५६)

अर्थ—त्रिवर्णोंका विवाह और पंक्ति भोजन त्रिवर्णोंमें होता है शूद्रोंमें नहीं, शूद्रोंका शूद्रोंमें होता है।

पाठकगण! यह वाक्य संग्रह (सामान्यग्राही) नयकी अपेक्षा से कहागया है और शंकाकार उसे व्यवहार (भेद करनेवाली) नयमें घर्सीटता है, ये न जानना ही शङ्काका कारण है, अस्तु इस शङ्काका उत्तर ऐसा है, कि ये वाक्य सामान्य हैं और सामान्य वाक्य विशेषका बाधक नहीं होता। जैसे वर्त्तमानमें एक हिन्दुस्थान देश है, दूसरा है विलायत, तो कोई कहनेवाला यह कह सकता है कि हिन्दुस्थानियोंकी शादी विवाह हिन्दुस्थानियोंके साथ होती है, और विलायतवालोंकी विलायतवालोंके साथ। यह बात वर्त्तमान व्यवस्थासे मिलती भी है, परन्तु विशेष विचार किया जाय तो सब हिन्दुस्थानवालोंका सब हिन्दुस्थानवालोंसे विवाह नहीं होता, अपनी २ जातिमें होता है। इसीप्रकार विलायतवालोंका भी विवाह है। ये तो हुवा दृष्टान्त अब दार्ष्टान्त पर आइये! ब्राह्मणोंका विवाह ब्राह्मणोंके साथ होता है, वैश्योंके साथ नहीं। क्षत्रियोंका क्षत्रियोंके साथ होता है, ब्राह्मणोंके साथ नहीं, इत्यादि। इसीप्रकार शूद्रोंमे जो नाई, धोवी, कहार, खटीक आदि अनेक जातियां हैं उनका भी उन्हींकी जातियोंमे होता है, भिन्न जातियोंमें नही इसीप्रकार यदि और भी विशेष संग्रह (सामान्य) नयपर विचार किया जाय तो ऐसा कह सकते है कि तिर्यंचो का तियचोंके साथ विवाह होता है और मनुष्योका मनुष्योंके साथ, और यह बात है भी सत्य कि, तिर्यंचोंका स्त्रीसंभोग तिर्यं-

चनीके साथ ही है, मनुष्यनीके नहीं। मनुष्योंका मनुष्यनीके साथ है, तिर्यंचनीके नहीं। परन्तु तिर्यंचोंकी जातियोंमें भी परस्पर संबंध है, सबमें नहीं, जैसे घोडाका घोडीके साथ, गायका गायके साथ आदिक।

इसीप्रकार मनुष्योंमें जो मनुष्य जिस जातिका है उसका उसी जातिके साथ विवाहसंबंध है। यही कुल भेदका कारण है और यही वारह स्वरूप कुलभेद है। अन्यथा शक्ल सूरतसे सब एकसे, फिर कुलभेद कैसा?

अब पाठकगण धर्मसंग्रह श्रावकाचारके श्लोकोंपर ध्यान दें कि वहां सामान्य कथन है या नहीं। देखिये—

> मनुष्यजातिरेकैव विपाकान्नामकर्मणः।
> चारित्राद् वृत्तिभेदाच्च गोत्रकर्मोदयादपि॥
> चतुर्वर्णाः समुद्दिष्टाः पुरा सर्वविदा खलु।
> केवल्यार्हास्त्रयः पूज्या हीनोन्त्यस्तदभावतः॥
> परस्परं त्रिवर्णानां विवाहः पंक्तिभोजनं।
> कर्त्तव्यं न च शूद्रैस्तु शूद्राणां शूद्रकैः सह॥
> स्वां स्वां वृत्तिं समुत्क्रम्य यः परां वृत्तिमाश्रयेत्।
> स दण्ड्यः पार्थिवैर्बाढं वर्णसंकरतान्यथा॥
>
> (धर्मसंग्रह श्रावकाचार श्लोक २५४।२५५।२५६।२७५)

अर्थ—मनुष्यजाति नामकर्मके उदयसे एक है, परन्तु चरित्रसे, व्यापारभेदसे, गोत्रकर्मके उदयसे चारवर्ण हैं जिनमें तीन

मोक्षके पात्र हैं, पूज्य हैं और अन्तका शूद्र मोक्षका पात्र नहीं निकृष्ट है ॥ २५५ ॥

त्रिवर्णोंमें परस्पर विवाह और पंक्तिभाज है शूद्रोंके साथ नहीं, और शूद्रोंका शूद्रोंके साथ है ॥ २५६ ॥

अपने अपने कर्मको छोडकर जो अन्य कर्म धारण करेगा वह राजाओंसे दण्डनीय होगा। क्योंकि दूसरी तरह वर्णसंकरता होती है ॥ २५७ ॥

यहांपर संग्रहनयसे पूर्व तो सब मनुष्योंकी एक जाति प्रतिपादन की, जो सत्य है। मनुष्यत्वेन कौन मनुष्य मनुष्य नहीं है? यदि और भी संग्रहनयसे कहा जाय कि जीव जाति एक है तो क्या नारकी, देव, पशु, मनुष्य, जीवत्वेन एक जीव नहीं हो सकते? यदि और भी संग्रहनयसे कहा जाय तो जीव अजीव आकाशादिक द्रव्यत्वेन सब एक हैं, क्या नहीं हो सकते?

इस नयापेक्ष कथनसे कोई गुरु मनुष्यजातिको एक कह-रहा हो और शिष्य अपने एकमयी भगवान् करनेके भावसे उन मनुष्योंमें ऊंच नीच भेद उडाना चाहे, या कुलभेद नष्ट करना चाहे तो यह उनका मायाजाल है जो सर्वथा हेय है। अब यह दिखाते हैं कि उन मनुष्योंके चार भेद हैं, सबोंके लौकिक आचार भिन्न २ हैं जैसा कि हाथ धोना, ब्राह्मण शौच करके चार वार हाथ धोयगा, तो क्षत्रिय तीन वार, इसीप्रकार कुल्ला ब्राह्मण शौच जाकर दोवार तीन वार करेगा तो क्षत्रिय दो इन सब वातोंमें ब्रह्मण, क्षत्रिय वैश्यों के आचार भेद है, विशेष त्रिवर्णाचारोंसे देखना चाहिये।

और व्यापारमें भेद है, ब्राह्मणका पठन पाठन दानादि ग्रहण है, क्षत्रियका (तलवारसे) रक्षा करना या तलवारकी नौकरी करना है, वैश्यका व्यापार मसि, कृपि, आदि है, शूद्रका कर्म शिल्पसेवा है, इन सब भेदोंसे उनमें भेद है। ऊंच गोत्रके उदयसे भेद है। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका ऊंचगोत्र है, शूद्रोंका नीच। अब और दिखाते हैं कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंमें परस्पर विवाह होता है अर्थात् ब्राह्मणका ब्राह्मणके साथ, क्षत्रियका क्षत्रियके साथ, वैश्योंका वैश्योंके साथ, किंतु इन तीनोंका शूद्रोंके साथ नहीं, शूद्रोंका केवल शूद्रोंके साथ होता है और वर्तमानमें भी इसीप्रकार हो रहा हैं और स्वयं पं० मेधावीजी भी २००-२५० वर्ष हुये जब हुए हैं। यदि उनको तीनों वर्णोंका तीनो वर्णोंमें अभीष्ट होता तो वह उस-समयमें होनेवाली इस पद्धतिका निषेध भी करते और आदिपुराणके अनुसार जिसे शङ्काकार "शूद्रा शूद्रेण वोढव्या" श्लोक द्वारा अनुलोम विवाह विधान बताता है, उससे ब्राह्मणकी कन्या क्षत्रिय नहीं लेसकता। परन्तु जब इसका अर्थ तीनोंका तीनोंमे विवाह होता है, ऐसा है तो ब्राह्मणकी कन्या क्षत्रिय ले सकता है, यह विरोध एक सर्वमान्य श्री० जिनसेन स्वामीके वचनसे आता है।

दूसरा विरोध यह है कि पं० मेधावीजी शूद्रोंकी कन्या शूद्र ही ले सकता है अन्य नहीं, ऐसा कहते है और शंकाकारके मतानुसार आदिपुराणवाले शूद्रकी कन्याके, ब्राह्मण, क्षत्रिय सब ही गाहक हैं। कहिये! इस विरोधका भी कुछ ठिकाना है? अब आप विचारें कि जब पं० मेधावीजी चारवर्ण बता रहे हैं

और परस्पर त्रिवर्णोंमें विवाह संबन्ध बता रहे हैं और शूद्रों-का शूद्रोंके साथ। फिर अगले श्लोकमें यह क्यों कहते कि अपनी अपनी वृत्तिको छोड़कर दूसरेकी करेगा वह राजसे दण्ड पायगा और वर्णसंकरता करेगा।

पाठक विचारें कि क्या द्विजन्माओंका जब शूद्रोंके साथ सम्बन्ध होगा तब तो वर्णशंकरता होगी, और ब्राह्मणवर्णका क्षत्रियवर्णके साथ सम्बन्ध होगा तो वर्णसंकरता न होगी, ये कैसा आश्चर्य है? यदि पं० मेधावीजीको केवल द्विजन्मा (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) का, शूद्रके साथ सम्बन्ध ही से वर्णसंकरता अभीष्ट होती, ब्राह्मण, क्षत्रियोंमें परस्पर नहीं तो "स्वां स्वां वृत्ति" न कहते, किन्तु शूद्र द्विज वृत्ति ऐसा कहते। परन्तु श्लोकमें स्पष्ट "स्वां स्वा वृत्तिं" है इससे यही अर्थ होता है कि ब्राह्मणका ब्राह्मणके साथ विवाह होता है और क्षत्रियका क्षत्रियके साथ न कि चारों वर्णोंका चारो वर्णोंमें, अन्यथा वर्णसंकरता है।

पाठकगण! कहें क्या? किसीप्रकार विजातीय-विवाह प्रचलित हो, सबसे विवाह किया जाय, यही जब मनमे निश्चय कर लिया है तब शास्त्रोंकी भी मिट्टी पलीत की जाती है। वास्तव में धर्मसंग्रहश्रावकाचारका मत यही है कि जिसकी कुलजाति समान हो, ऐसे साधर्मीको कन्या देनी चाहिये।

पाठकगण! आज हम एक ऐसे शास्त्रका प्रमाण आपके समक्ष उपस्थित करते हैं जिसमें स्पष्ट शब्दोंमें जातियोंको अनादि माना है, और लौकिक, धर्म, विवाहादिक भी उसी अनादि

पद्धतिरूप बनाये हैं जो सजातिकी पुष्टि कर रहे हैं और जाति-सत्ता भी तब ही स्थिर रह सकती है जब अपने कुलमें विवाह हो। देखो प्रमाणमें—

द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः।
लोकाश्रयो भवेदाद्यः परः स्यादागमाश्रयः॥
जातयोऽनादयः सर्वास्तत्क्रियापि तथाविधा।
श्रुतिः शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं कात्र न क्षतिः॥
स्वजात्यैव विशुद्धानां वर्णानामिह रत्नवत्।
तत्क्रियाविनियोगाय जैनागमविधिः परं॥

(यशस्तिलक चम्पू उच्छ्वास ८ श्लोक १६।१७।१८)

अर्थः—गृहस्थोंको दो धर्म हैं एक लौकिक दूसरा पारलौकिक। लौकिकधर्म लोकके आधीन है, पारलौकिक, शास्त्रके आधीन है॥ १६॥

सब जातियां अनादि हैं और उनकी क्रिया भी अनादि है। अङ्गशास्त्र या अङ्गबाह्य शास्त्र यदि उसके प्रमाणमें मिले तो हमारी क्या क्षति है ? ॥१७॥

जो अपनी जाति है उसके अनुसार दोषरहित वर्णसंबंधी आजीविका विवाहिक क्रिया करे, यदि इसमेंसे किसीको पलटना हो तो शास्त्रोंकी आज्ञा देखें ॥ १८॥

पाठकगण ! शास्त्रकारने कैसे भावपूरित शब्दोंमें स्पष्ट विवेचन किया है। पूर्व तो यह दिखाया है कि मनुष्यके दो धर्म हैं एक तो जिसका फल इसलोकमें लगे, दूसरा वह जिसका फल

दूसरे जन्ममें प्राप्त हो या इस जन्ममें हो तो परोक्षरूप हो। लोक क्या है ? जो भिन्न २ स्वरूप जाति रूप है। वह जातिया जिन्हें वंश कहिये चाहे कुल कहिये, जिनके मनुष्योंमें बारह खरब भेद हैं वे अनादि हैं और उनकी क्रिया भी अनादि हैं। लौकिक क्रिया भी प्रायः अपनी २ जातिके अनुसार सबोंकी भिन्न हैं। इसी बातको ग्रन्थकार कह रहा है परन्तु जिन्हें एकमयी भगवान् ही करना अभीष्ट हो वह क्यों ऐसे प्रमाणोंपर ध्यान द।

पाठकगण! अब हम आपको एक ऐसे शास्त्रका प्रमाण देकर, (कि जो शास्त्र किसीप्रकारके आम्नायविरुद्ध न भापण करनेसे, आदिपुराणजीके समान प्रमाण है) शास्त्रप्रमाण देना बंद करेंगे। यद्यपि जब मैं जयपुर गया था वहां एक सधिसंहिता और बम्बई गया था तो वहां कुमुदचन्द्रसहिता, भद्रबाहुसंहिता आदि अनेक ग्रन्थ देखे थे परन्तु वह यहा न होनेसे उनका प्रमाण नहीं लिखा जा सका, उन सब ग्रन्थोंका यही रहस्य है कि समान जाति (समानकुल) में विवाह हो। जैसे कि खंडेलवालोंका खंडेलवालोंके साथ, अग्रवालोका अग्रवालोंके साथ विवाह होता है।

देवशास्त्रगुरून्नत्वा बन्धुवर्गात्मसाक्षिकम्।
पत्नी पाणिगृहीती स्यात्तदन्या चेटिका मता॥
तत्र पाणिगृहीती या सा द्विधा लक्षणाद्यथा।
आत्मज्ञातिः परज्ञातिः कर्मभूरूणिसाधनात्॥
परिणीतात्मज्ञातिश्च धर्मपत्नीति सैव च।

धर्मकार्ये हि सध्रीची यागादौ शुभकर्मणि ॥
सूनुस्तस्याः समुत्पन्नः पितुर्धर्मेऽधिकारवान् ।
स पिता तु परोक्षः स्याद्दैवात्प्रत्यक्ष एव वा ॥
स सूनुः कर्मकार्येऽपि गोत्ररक्षादिलक्षणे ।
सर्वलोकाविरुद्धत्वादधिकारी न चेतरः ॥
परिणीतानात्मज्ञातिर्या पितृसाक्षिपूर्वकम् ।
भोगपत्नीति सा ज्ञेया भोगमात्रैकसाधनात् ॥
आत्मज्ञातिः परज्ञातिः सामान्यवनिता तु या ।
पाणिग्रहणशून्या चेच्चेटिका सुरतप्रिया ॥
चेटिका भोगपत्नी च द्वयोर्भोगाङ्गमात्रतः ।
लौकिकोक्तिविशेषोऽपि न भेदः पारमार्थिकः ॥
भोगपत्नी निषिद्धा स्यात्सर्वतो धर्मवेदिना ।
ग्रहणस्याविशेषोऽपि दोषो भेदस्य संभवात् ॥
भावेषु यदि शुद्धत्वं हेतुः पुण्यार्जनादिषु ।
एवं वस्तु स्वभावत्वात्तद्दतात्तद्विनश्यति ॥

पाठकवर्ग! लाटीसंहिता, श्लोक नं० ८३ से ६२ तक पर ध्यानदें।

अर्थ—देव शास्त्र गुरुओंको नमस्कार करके जो जाति बिरादरी व कुटुम्बियोंकी साक्षीपूर्वक जिस स्त्रीके साथ विवाह होय, उसका नाम पत्नी है। तातैं दूसरी स्त्री चेटिका कही है ॥ ८३ ॥

वह विवाहिता स्त्री दो प्रकार है एक अपनी जातिकी दूसरी परजातिकी ॥ ८४ ॥

जो विवाहिता स्त्री अपनी जातिकी है वो धर्मपत्नी है। वह धर्म-पत्नी धर्मकार्य यज्ञ, प्रतिष्ठा, दानादिक शुभ कार्योंमें सहाय करने-वाली है ॥ ८५ ॥

उस धर्मपत्नीसे उपजा बालक पिताके धर्मकार्यमें अधि-कारी है वह परोक्षरूपसे पिता ही है और आगामीमें पितारूप ही है ॥ ८६ ॥

वह भोगपत्नीका पुत्र कर्मकार्यमे भी और गोत्ररक्षादि कार्यमें भी सब लोकोंसे मान्य होनेसे अधिकारी है दूसरा नहीं ॥८७॥

जो स्त्री पराई जातिको पिताकी साक्षीपूर्वक विवाही गई होय, वह भोगपत्नी जाननी। क्योंकि, तात भोगमात्र ही सधे ॥ ८८ ॥

जो स्त्री अपनी जातिकी या पराई जातिकी कैसी भी विना विवाही होय वह चेटिका कहाती है, क्योंकि वह भोगसे प्यारी है ॥ ८९ ॥

चेटिका और भोगपत्नी ये दोनों ही भोगकी सामग्री हैं। लौकिक जनकर कह्या भया ही भेद है, किन्तु वास्तविक भेद नहीं ॥९०॥

सब हो धर्मात्मओंको भोगपत्नी वर्जनीय है, सामान्यपन ग्रहण होते भी दोषकी ही संभावना है ॥ ९१ ॥

भावोंमें जो शुद्धिपना है वह पुण्यसंचयका कारण है, ऐसा वस्तुका स्वभाव है, भावकी शुद्धतारहित प्राणी नष्ट होय हैं ॥ ९२ ॥

पाठकगण ! ऊपरके कहे श्लोकोंमें स्पष्टपने कह दिया गया है कि सजातीय विवाह ही धर्मविवाह है, वही सजातीय स्त्री

धर्मपत्नी है, वही सब धर्म कर्म कार्यमें साथिनी है, उसीका पुत्र धर्म-कर्म कार्यमें सहाई है। अन्य जो भोगपत्नी है और जो विना विवाही कैसी भी स्त्री है सब चेटिका कहाते हैं, जिन्हें लोकमें धरी हुई (धरेजी) कहाते हैं। इस कथनसे आशा है कि कोई शंका न रहेगी।

प्रायः शास्त्रोंमें जो विजातिविवाहका वर्णन मिलता है वह राजाओंका कथन है और राजा प्रायः भोगी होते हैं, इसलिये उनकी वह स्त्री भोगपत्नी समझनी चाहिये। वर्त्तमानमें शारीरिक बल इतना नहीं है कि लाला १-२ धर्मपत्नी और १-२ भोगपत्नी रक्खें। अब तो एक स्त्री ही हो तो सब आनन्द है। जिसमें धर्मपत्नी न मिलकर-मिल जावे भोगपत्नी, तो उससे उपजी संतान न उत्तराधिकारी हो बन सकती है न गोत्ररक्षा हो सकती है, उलटी कुलहानि है। इसीलिये ग्रन्थकारने धर्मात्माओंको भोगपत्नी निषिद्ध कही है।

पाठकगण ! अब हम इस शास्त्रीय प्रमाणको देकर प्रमाणोंको पूर्ण करेंगे और इस महापुराणके प्रमाणसे आप वंश, कुल, जाति-को अनादि माननेमें कदापि शङ्का न करेंगे। आज जो खडेलवाल अग्रवाल आदि जातियां प्रतीत हो रही हैं: वो सब अनादि हैं। चाहें उनके नाम किसी कारणविशेषसे परिवर्त्तित (पलट) होगये हों परन्तु वह जाति अनादिकी हैं वो न पलटी है, न पलटेंगी।

देखो प्रमाणमें—

तत्कथं कर्मभूमित्वादद्यत्वे द्वितयी प्रजाः।

कर्त्तव्या रक्षणीयैका प्रजानमारक्षणोद्यता ॥
रक्षणाभ्युद्यता येऽत्र क्षत्रियाः स्युस्तदन्वयाः ।
सोन्वयोनादिसन्तत्या बीजवृक्षवदिष्यते ॥
विशेषस्तु तेतत्सर्गः क्षेत्रकालव्यपेक्षया ।
तेषां समुचिताचारः प्रजार्थेन्यायवृत्तिता ॥
(आदिपुराण ४२ वां पर्व श्लोक १०–११–१२)

अर्थ—कर्मभूमि विषैं कोई बलवान् भये कोई निर्बल भये सो निबलनको सबलन दबाये तब क्षत्री थापे और प्रजा तो रक्षा योग्य है और क्षत्री रक्षक है ॥ १० ॥

प्रजाकी रक्षाविषे उद्यमी भए, तातें क्षत्री कहाये सो यह क्षत्रियोका वंश अनादिकालतैं वटके बीजकी नांई विस्तारको प्राप्त हो रहा है ॥ ११ ॥

महा विदेह विषें तो अनादिकालसे अखण्डरूप चला जाय हैं कबहूं विच्छेद नाहीं, भरतादि दश क्षेत्रविषें उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रवर्त्तें है उनमें सर्वथा नाश होय नहीं ॥ १२ ॥

पाठकगण इससे अधिक और प्रमाण क्या होगा परन्तु हुण्डावसर्पिणी कालमें जो न होनेकी बाते हैं वह भी शीघ्रतासे हो रही हैं। जो धर्मके रक्षक हैं, वह भी धर्मभक्षक बन गये, इससे अधिक और कालका क्या माहात्म्य होगा ?

पाठकगण ! हम यथाशक्ति शास्त्रोंके प्रमाणोंको दिखा चुके ह, यद्यपि प्रमाण और भी अनेक हैं किन्तु बुद्धिमानोंको इतने ही बहुत हैं, अन्यथा मिथ्यादृष्टिको तो ग्यारह अङ्ग भी आत्मज्ञानके कारण नहीं होते ।

अब कुछ लौकिक युक्तियोंसे भी हानिलाभपर विचार करना आवश्यक है, आशा है कि आप ध्यान देंगे।

(१) सर्वार्थसिद्धिके कर्त्ता पूज्यपाद स्वामी, माघनन्दी आचार्य पद्मावतीपुरवाल जातिके थे और भी अनेक आचार्य अन्य जातियोंके थे तो क्या ये जातिभेद अनादिका नहीं है? यदि जन्म से जाति है और जन्म, जाति ये दोनों शब्द एक "जनी" प्रादुर्भावे धातुके हैं तो क्या जन्मके समान जाति शब्द अनादिका नहीं है? और जब जाति शब्द अनादिका है तो इनका अर्थ अनादि है या नहीं?

पाठकगण! यहां कोई यह शङ्का करे कि शब्दका अर्थ तो सङ्केतसे हुआ करता है और संकेत सादि है तो जाति जन्म इन शब्दोंका अर्थ अनादि नहीं हो सकता। तो इसका यही उत्तर है कि जो परिभाषिक शब्द हैं वे तो संकेत द्वारा होते हैं और जो योगिक शब्द हैं वे धातुसे बनते हैं। धातु अनादि हैं इसलिये वे शब्द भी अनादि हैं और उनके अर्थ भी। बस यही बात यहां है, जो जन्म और जाति शब्द हैं वह एक धातुके प्रयोग हैं, अत' जाति का जन्मके साथ संबन्ध है।

(२) आज एक जातिका एक जातिमें विवाह होता है, जैसा कि जैनियोंमें है, उसीप्रकार वैष्णव आदिमें है। तो यह बात जो शास्त्रोंके आधारसे ठीक है उसे नष्ट कर उलटा प्रमाण इस बातका मांगा जाता है कि ये प्राचीन कैसे हैं, इससे प्रयोजन क्या है? हम उन विजातिविवाह करनेवालोंसे ही पूछते हैं कि यह जाति-

भेद यदि नया है तो कबसे चला है और क्यों चला है ? और नया था तो जब ब्राह्मण आदि वर्ण भी नियत नहीं हुए थे तब भगवान् ऋषभदेवके पिता नाभिराजाने क्यों सोचा था कि मैं इस अपने पुत्रको योग्य जातिकी कन्या विवाहूं ? क्या उनको वैसे ही शोच हुआ था या किसी आधारसे ? फिर जातिभेद नवीन कैसे और नवीन है तो किसने चलाया और क्यों ?

(३) विजाति विवाहसे जो गुण सजाति विवाहसे होते हैं वे नष्ट होजाते हैं, जैसे घोड़ीका गधेके साथ संबंध होजाय तो उसकी सन्तान न घोड़ा होगी न गधा ; किन्तु "खिच्चर" होगी, ठीक इसीप्रकार खंडेलवालके साथ अग्रवाल कन्याका संबंध होनेपर सन्तान न खंडेलवाल होगी न अग्रवाल किन्तु "खण्डाग्र" होगी।

यदि कोई यह शङ्का करे कि घोड़ी गधामें जिसप्रकार अंतर है उस प्रकार मनुष्योंमें नहीं होता, तो हम कह सकेंगे कि विवाह का फल जब सन्तानोत्पत्ति है तो घोड़ी गधेसे जो सन्तान हो जाती है तो अन्तर कहां रहा ? दृष्टान्तसे केवल दिखाना इतना ही है घोड़ी घोड़ाके संबंधमें जैसा घोड़ा जनती है वैसा गधेके संबंधसे नहीं जनसकती, यह न गधा ही जनती है और न घोड़ा ही, किन्तु दोनोंसे विलक्षण एक तीसरे प्रकारका खच्चर जनती है। जहां दूसरेके संबंधसे पशुओंमें सन्तान नहीं होती वहां उनका संबंध भी नहीं होता, जैसे सिंहनीके साथ खरगोशका। कोई यहां यह शङ्का करे कि जब खण्डेलवाल अग्रवाल जातिके साथ संबंध

होनेसे जातिसंकर दोष आता है तो खंडेलवाल जातिमें पाटनी गोत्रके लडकेका लुहाडा गोत्रकी लड़कीके साथ सम्बन्ध होनेसे क्या गोत्रसंकर दोष न आयगा ? तो इसका उत्तर यही है कि गोत्र जातिके ही अङ्ग हैं या जातिकी ही रक्षा करनेका भाव गोत्रका है। भिन्न जातिका सम्बन्ध भिन्न जातिके साथ होनेसे तो जातिसंकर दोष होगा, परन्तु जो गोत्र एक जाति रूप वृक्षकी शाखारूप है वे भिन्न होनेपर भी संकर दोषको नहीं प्राप्त होते। भोग भूमिमें जो त्रुटि है वह यही है कि वहां जाति तो है परन्तु एक गोत्रकी सन्तान धारावाहिक रूपसे चली आ रही हैं अतः गोत्र हानि है। जो एक गोत्र अपना चला आरहा है उसका उस गोत्र वालोंके साथ वीर्य सम्बन्ध है, अतः भ्रातृभाव है अन्य गोत्री से नहीं, अतः अपनी जातिकी अन्य गोत्रमें होनेवाली कन्या ही विवाहयोग्य है। यही बात दीक्षायोग्य पुरुषके लिये कही गई है कि, विशुद्ध कुल गोत्रवाला ही दीक्षाका अधिकारी है।

(४) विजाति-विवाहसे जब सन्तान होगी तब जाति-संकर दोष आवेगा। जब विवाहका फल सनातन है तो वह भिन्न जाति में क्यों हो ? समान जातिमें होना चाहिये। यदि भिन्न जातिमें विवाह होगा तो जाति संकर दोष अवश्य आवेगा।

यदि कोई मनुष्य यह शङ्का करे कि "भिन्न जातिमें विवाह होनेसे जाति-संकर दोष आता है तो काले गोरेके साथ विवाह होनेसे रंग-संकर दोष आता है, रोगी निरोगीके साथ सम्बन्ध होनेसे स्वास्थ्य-संकर दोष आता है, मूर्ख विद्वानके साथ सम्बन्ध

होनेसे गुण-संकर दोप आता है, वर ४० वर्पका और कन्या १२ वर्पकी हो तो उम्र-संकर दोप आता है, इत्यादि"

परन्तु पाठक ध्यान दें कि शङ्काकारकी जितनी शंकायें हैं सब; जाति-संकर दोप जो एक शास्त्रीय दोप होता है जिसे शास्त्र-कारोंने लिखा है त्रिलोकसारजीकी गाथा ६२४ में उल्लेख है कि "जाति संकर प्राणी दानके पूर्ण फलको नहीं प्राप्त हो सक्ता" इस जाति संकर दोपका हास्य उड़ानेके लिये रंग-संकर, स्वास्थ्य संकर, गुण संकर, उम्र संकर, आदि दोप दिखादिये जिससे कि भोली जनता समझ जाय कि ये दोप जब होते हैं तो जाति संकर भी एक और दोप होगया तो क्या हानि होगई ? परन्तु विचार करना चाहिये कि जब कृष्ण काले थे तो उनका विवाह सत्यभामा रुक्मिणी आदि रूपवती कन्याओंके साथ हुआ था या नहीं ? किसी कविने भी कहा हैं कि "यः सुन्दरस्तद्वनिता कुरूपा। या सुन्दरीसा पतिरूपहीना ॥" अर्थात् जो मनुष्य रूप वाला है उसकी स्त्री रूपिणी नही है और जो स्त्री रूपिणी है उसका पति रूपवाला नहीं है। यह तो होता ही हैं इसके प्रमाण जैसे मिलते हैं, तदनुसार कहीं शास्त्रीय आज्ञाके अनुकूल जाति संकर भी होगा ऐसा दिखाना चाहिये।

रहा "स्वास्थ्य-संकर" सो यह मिथ्या है क्योंकि कोई भी रोगी पुरुपको अपनी कन्या नहीं ब्याहता और इससे विरुद्ध शास्त्र-की यह आज्ञा भी मिलती है कि सगाई हुए बाद कोई रोगी होजाय तो ब्याह न किया जाय। तथा प्रवृत्तिमें भी देखा गया है कि अनेक

सगाई सम्बन्ध बीमार होनेपर छूट गये हैं। फिर न मालूम शङ्का-कार स्वास्थ्य संकर कहांसे निकाल लाया ?

"गुण-संकर दोष" मूर्ख और विद्वान् का सम्बन्ध, सो यह सदा ही रहेगा। एक दूसरे पुरुषकी अपेक्षा मनुष्यका ज्ञान कम अधिक होना ही है फिर इसमें गुण संकरकी क्या बात है? बाकी जो गुण स्त्रीका देखा जाता है वह मनुष्य देख ही लेते हैं। यथा कपड़े सीना, गृहकार्य कुशलता आदि। इसपर भी यदि गुण संकर ही दोष है तो स्वयं आदिनाथ भगवान् तीन ज्ञानके धारक थे, उनका विवाह भी तीन ज्ञान धारिणी स्त्रीसे होता; सो नहीं हुवा, इसलिये यह गुण संकर न होने रूप नियम शास्त्रीय नहीं है, न मालूम संकाकारने किस विकट मस्तिष्कमेंसे इसका आविष्कार किया है।

रहा "उम्र-सकर" दोष, सो शास्त्रकी आज्ञा विवाहके लिये १२ वर्षकी कन्या और १६ का पुरुष हो, ऐसी है और प्रकारसे विकार है और न कोई इसका समर्थक है। यदि कहीं होता है तो जबतक मनुष्यमें अच्छी सन्तानोत्पत्ति करनेकी शक्ति है तबतक ठीक है। प्राचीन कालमें भी जब बहुतसे विवाह एक एक राजाके हुए तो उनकी आयु विवाह योग्य कुमारवय) पर ही हुए हों ऐसा नहीं था; किन्तु उनमें शक्ति अधिक होती थी, इसलिये अधिक आयुष्यमें भी विवाह हुए। इस कारण उम्र संकर आदिके बहानेसे "जाति संकर' दोष, दोष नहीं है, यह कदापि नहीं होसकता।

(५) विजाति विवाहसे वृद्धोंके विवाह और भी भयंकर

रूपसे होने लगेंगे। क्योंकि जब किसी जातिके वृद्ध पुरुषको अपनी जातिमें उस जातिकी कन्या नहीं मिलती तो हताश होकर उस समय बैठना पडता है, किन्तु जब विजाति विवाह होने लगेगा तो फिर धनिक वृद्ध विधुर रह नहीं सकते। जिसका परिणाम "विधवाओंकी अधिकता" होगा। फिर विधवा विवाहकी कहेंगे, यही उनको अभीष्ट है।

अतः "विजाति विवाह विधवा विवाहकी गुप्तिया पुलिस है यही नहीं, किन्तु स्पष्टरूपसे विजाति विवाह विधवाविवाहका कारण है। यहां कोई शङ्का करे कि विजाति विवाहसे वृद्ध विवाह बढ जायगा ये हम मानते हैं," परन्तु युवकोंको कितना लाभ है, जो उन्हें योग्य संबंध मिलेंगे। तो इसका यही उत्तर है कि कन्या का पिता, क्षेत्र बढ़नेसे धनीकी ही खोजमें रहेगा और निर्धन योग्य युवक भी विजाति विवाहसे कोरे रह जांयगे। आज जो ग्रामीण जातिके युवक विवाहित हो जाते हैं यह जाति बन्धनका ही माहात्म्य है। उलटा हानिके स्थानमें लाभ दिखाना भयंकर पाप है जो लेखके अगोचर है।

(६) विजाति-विवाहसे जो वर्त्तमानमें जातीय संगठन है वह सब नष्ट होजायगा और एक नये प्रकारकी ही सृष्टिका युग आवेगा जो किसी प्रकार भी धर्म मर्यादाको कायम न रख सकेगा प्राचीन पद्धति ही मान्य है, नवीन बात नवीन जातिके ही लिये सुखावह है, जैसा कि आर्य समाजियोंके लिये नियोग, विधवा विवाह आदि। किन्तु सनातन जातिका धर्म भी सनातन ही सुख का हेतु है।

यदि यहा कोई यह आशङ्का करे कि जातिसंगठनसे कोई जाति: किसीके विवाह आदिमें योग नहीं देती है, सो ऐसे कहने वाला भी मिथ्यावादी है। बराबर जहां एक जातिके मनुष्य थोड़े हैं वहां उनके विवाहादिक कार्यमें दूसरी जातिके मनुष्य बराबर आते जाते हैं, फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि दूसरी जाति वाले सहायता नहीं देते? बल्कि देखा गया है कि जैनसे अन्य विधर्मी भी विवाह आदिकोमें आते जाते हैं। क्या इससे जैनोंको छोडकर अजैनोंके साथ भी विवाह करानेकी इच्छा है? कहें क्या वास्तवमें इच्छा तो सर्वमयी भगवान् करनेकी है; परन्तु उनकी इच्छामें यही जाति बंधन बाधक है, उसे ही मटियामेट करना चाहते है क्योंकि जब जैनोंकी सब जाति एक हुई फिर कहेंगे कि अजैनोंमें भी क्या हानि है, धर्म दूसरी बात है विवाह दूसरी बात है। और चट दृष्टान्त देदेंगे कि भरत महाराजने म्लेच्छ राजाओंकी कन्या विवाही तो वहां म्लेच्छ कौनसे जैनी ही थे तथा सिद्धान्तका प्रमाण देदेंगे कि "मनुष्य जाति एक ही है" फिर कहिये पाठको! कौन है इस भारतको यूरोप जैसा होने देनेसे बचाने वाला? आज आपका यही जाति बन्धन एक धर्म-प्राण जैन-धर्मका रक्षक है।

यहां कोई यह शंका करै कि विजातिविवाहसे जाति संगठन तो नष्ट होजायगा परन्तु स्थान २ पर नागरिक पंचायतें नियत होजायगी, जो सब पंचायती कार्य करेंगी। इसका यही उत्तर है कि जब जातीय संगठन जो अनादिकालसे चला आरहा है, वह

इस कलिके माहात्म्यसे ढीला पडता नजर आता है, या ढीला पड़ जायगा, तब शनैः शनैः मनुष्योंके विचार भी धर्मसे गिर जायगे। जैसा कि अभी "विधवा विवाह, छूनाछूत लोप" आदिकी आवाज लोगोंके मुंहमेंसे निकलने लगी हे फिर ज्यों २ इसका प्रचार होगा त्यों २ जातिसंगठन ढीला पड़ेगा और समय स्वतंत्रताका होगा जिसमें पंचायती बाल नियत ही न हो सकेगा, उसकी कल्पना करना कि पंचायती बलसे ये होगा वो होगा सब आकाश-कुसुम-की सुगंधि लेना है।

(७) विजातीय विवाहसे जातीय प्रेम नष्ट होजायगा। क्योंकि जब जाति ही न रहेगी तब जाति-प्रेम कहांसे रहेगा? इसके विप-क्षमें यदि कोई ऐसा कहे कि जब रिश्तेदारी जिनसे होगी उनसे प्रेम होगा सो ठीक है, क्या रिश्तेदारोंसे अब प्रेम नहीं होता? किन्तु विना रिश्तेदारोंके भी जिनसे सनातन जातिका संबन्ध चला आ रहा है, जब वह जाति ही न रहेगी फिर उस सम्बन्धी प्रेम कहांसे रहेगा? आज एक जैनी विदेशमें किसी जैनीसे मिलता है तो उससे एक धर्म धारित्वका ही अनोखा प्रेम होता है, और कहीं उसकी जाति एक हुई तो प्रेम और भी बढ़ जाता है और कही रिस्तेदारी निकल आवे तो प्रेम और भी बढ़ जाता है। प्रेम तो संसारमें अनेक कारणोंसे होता है। जब एक कारण "जाति" नष्ट कर दिया जावे तो उससे प्रेम नष्ट होजायगा। इसको भी न मानना, यह कैसी समझ और उच्छृङ्खलता है जोकि अवर्ण-नीय है।

(८) विजाति विवाह होनेसे जो २ अच्छी हितकर भिन्न २ रीतिया जिन २ जातियोंमे प्रचलित हैं वे सब पारस्परिक खींच तानसे ढचरा-मचरा होंगी और साथ ही एक कलहकी जड बन जायगीं - जो मिटाये न मिटेगी, तथा समाजमें वेलगाम घोडा जैसा उच्छृङ्खल हो जायगा। इसके उत्तरमें कोई कहे कि पंचायती बल उसके स्थानमें काम करेगा, सो पंचायती बल जबतक है तबतक तो यह विजातिविवाहकी भी नहीं प्रवृत्ति हो सकती, यदि हुई तो पंचायती-बल पूर्व ही नष्ट होजायगा। फिर विजाति विवाह जैसे कार्योंके होनेसे जो रीति रिवाजोंमें गडबड़ें होंगी उनमें यह सहायक नहीं हो सकता और सुधारक दल भी यही चाहता है कि कोई कार्य किसीके आधीन न रहकर सर्वथा आजादीकी विजय हो। यहा कोई यह शङ्का करे कि विवाह तो जैन धर्मके अनुसार हो जावे और लौकिक रीतियां जो २ प्रचलित हैं वे अनावश्यक हैं अतः उनको नष्ट कर एक नवीन योजना करलीजाय तो इसका यही उत्तर है कि जबतक जातीय पंचायतियां हैं तबतक ही धार्मिक एवं लौकिक क्रियाओंकी सत्ता है, अन्यथा न कोई धार्मिक क्रिया रहे न लौकिक। स्वतंत्रता तो सबको ही नष्ट कर देगी, और विना स्वतंत्रता बढे विजातिविवाह प्रचलित भी नहीं होता।

(९) वर्तमान समयमें अब भी जनता प्राचीन आगम पर श्रद्धा न रखने वाली है, अत: विजाति-विवाह जैसे आगमविरुद्ध मार्ग चलने पर समाजमें प्रेमके स्थानमें द्वेष उत्पन्न होगा और

एक दलके कई दल होजायगे। यदि इस विषयमें यह कहाजाय कि कोई एक नई वात अच्छी चालू की जायगी तब ही दलबन्दी होगी, तो क्या अच्छी नई वात चलाई ही न जावे ?

पाठक गण ! वास्तवमें यह बात ठीक है कि जो वात अच्छी होगी उसपर अच्छे पुरुषोंका दुराग्रह भी न होगा। परन्तु जो अपनी डेढ़ अक्लमें अच्छी वात जचजाय वही तो हो अच्छी और सब बुरी, इसका तो कुछ उपाय ही नहीं। पूर्व समयमें भी जब २ इस प्रकारकी वाधाऐं उपस्थित हुई हैं तब तब धार्मिक मडली-ने उनका पूर्ण विरोध किया हे और इसी विरोधसे अवतक धर्मकी सत्ता स्थिर रही है। श्वेताम्बरोंकी प्रवलतामें समाज-रक्षक यदि रक्षा न करते, तो समाज हो न रहती, एवं उत्सूत्री भट्टारकोंकी अनर्गलतामें यदि स्व० पं० टोडरमलजी न होते तो धर्म पलायांचक्रे होता था नहीं ? बस ठीक आज ऐसे ही विजाति-विवाह दो दल करनेको अग्रसर हुवा है।

(१०) विजाति-विवाहसे जो जाति भेद है वह नष्ट होजायेगा और उन जातियोंके भेद जो गोत्र हैं वे भी नष्ट होजांयगे। और जाति गोत्रोंके नष्ट होनेपर किसीका कुल और गोत्र शुद्ध न रहेगा तो महापुराणकी आज्ञानुसार कोई दीक्षा भी धारण न कर सकेगा और जो इस कार्यके संचालक है उनका भाव भी दीक्षा धारण करनेका नहीं है। परन्तु इसका विचार कर लेना आवश्यक है कि पंचम कालके अन्त पर्यंत भी मुनियोंका सद्भाव रहेगा। इस कारण इससे जाना जाता है कि यह जाति व्यवस्था भी टूटने वाली नहीं

है, और सुधारक दल भी अपने कर्तव्योंसे वाज आने वाला नहीं है अतः मोक्ष-मार्गकी साधनभूत इस जाति व्यवस्थाकी भी दिन २ हानि होगी।

यदि इसमें कोई यह कहे कि एक वर्णका दूसरे वर्णके साथ विवाह होने पर भी वर्ण व्यवस्था नष्ट नहीं हुई तो यह जाति ही कैसे नष्ट होजायगी सो यह कल्पना मिथ्या है, क्योंकि वर्ण, व्यापारसे सम्बन्ध रखने वाला है अतः आज अनेक प्रकारके व्यापार करलेनेसे किसी जातिका कोई वर्ण निश्चित नहीं कहा जा सकता, परन्तु जो विवाह कार्यमें जाति व्यवस्था आवश्यक है इसका नाश होनेपर कोई जातिभेद नहीं रह सकता जैसा कि वर्णव्यवस्था।

यहा कोई यह शङ्का करे कि खण्डेलवाल जातिके पाटनी गोत्रमें उपजे बालकका जिसप्रकार लुहाड़ा आदि अन्य गोत्रमें उपजी कन्यासे संबंध होनेपर जो सन्तान होती है उसका गोत्र पाटनी होता है और उस बालकका गोत्र नहीं पलटता है। उसीप्रकार विजाति विवाहसे जिस जातिका पुरुष होगा उसको कोई जातिकी स्त्री मिलो, परन्तु सन्तान उस पुरुषकी जातिकी ही रहेगी। तो इसका उत्तर यही है कि जातिके विशेष रूप जो गोत्र हैं वे जातिके ही अङ्ग हैं, अतः उनके परस्पर मिलने पर भी जाति नष्ट नहीं होती और एक जातिसे दूसरी जाति सर्वथा भिन्न है, उसके मिलने पर जाति-संकर दोष होता है, जैसे आम्र एक जाति है और देशी आम, लंगडा आम, मालदे आम ये सब आम्रजातिके गोत्र

रूप हैं इनके परस्पर मिलने पर आम्र जाति नष्ट नहीं होती, परन्तु आम्रजातिसे भिन्न अन्य अमरूद बेर आदिक जो जाति हैं उनके मिलनेसे जाति-संकर दोष हो जाता है। जो दोष हुवासन्ता पुरुषके भावोंमें (आत्माके कल्याणमें) इतना हानिकर होता है जो दीक्षाका अधिकारी नहीं होने देता।

(११) विजातिविवाहकी कोई आवश्यकता नहीं है जो इस जातिव्यवस्थाको तोड़ दिया जाय जिसका कि आगम आधार है। जो वर्तमानमें जैन अजैनमें जिसकी प्रवृत्ति है उसे तोड़देना केवल एक उद्दण्ड मार्ग है और कुछ लाभ नहीं है।

इसके विपक्षमें यदि कहाजावे कि जिस समाजमें मनुष्योंको जितनी अधिक स्वतन्त्रता होगी वह उतना ही समुन्नत समझा जायगा। इसका उत्तर यह है कि जब स्वतन्त्रता ही उन्नतिका कारण है तो समाज रूपी बंधन भी क्यों शिर पर लादा जा रहा है, इसकी भी मुक्ति करके क्यों न पूर्ण स्वतन्त्र हो उन्नत बन जाना चाहिये ?

(१२) विजातिविवाह वाले जो विजातिविवाहसे यह कहते हैं कि विवाह क्षेत्र बढ़ जानेसे योग्य वर कन्या मिलने लगेंगे तो इसमें सन्देह नहीं कि अब तो ४०-५० वर्षके ही वुड्ढ ब्याहे जाते हैं दो चार हजार देकर, फिर ६०-७० वर्षके भी बूढ़े हजार पन्द्रह सौ देकर ब्याहे जाने लगेंगे।

यदि जैनियोंकी जातिमें विवाह न कर अन्य ब्राह्मण वैष्णव वैश्य आदिकोंके साथ संबंध कियाजाय तो और भी वर कन्या

मिलने लगेंगीं। यदि इससे भी अधिक उन्नति करनी हो तो हिन्दुस्तानी मात्रमें सब जातियोंसे विवाह कियाजाय, तो हो सकेगो और उनको पाठ सुना दिया जायगा कि "मनुष्य जाति एक ही है"। फिर क्या त्रुटि रहेगी? हमारी सम्मतिमे तो मनुष्योंका स्त्री के साथमें जब विवाह होता है तो मनुष्य मात्र स्त्रीमात्रके साथमें विवाह करे यही स्वतन्त्रता क्यों न रक्खी जाय? जब स्वतन्त्रत होना या स्वतन्त्र कर देना ही उन्नतिका मार्ग है तो फिर स्वतन्त्रतामें क्यों त्रुटि कीजाय?

यहा कोई यह शङ्का करे कि विजातिविवाहसे नये तो कुछ वृद्ध होही नहीं जांयगे और वृद्धविवाह जो लोक-लज्जा आदि कारणोंसे रुकता है वह विजातीयविवाहसे और भी अधिक रुकेगा। तो इसका यही उत्तर है कि विजाति-विवाहसे वृद्ध तो अधिक न होंगे परन्तु वृद्धोंका विवाह अवश्य अधिकतासे होगा। क्योंकि जातिमर्यादासे तो कन्या नहीं मिलती तो दैवको दोप देकर चुप ही होना पड़ता है। परन्तु जब क्षेत्र बढ़ेगा तो धन बलसे अधिक वृद्धविवाह होंगे और लोकलज्जासे रुकेंगे यह कहना तो सरासर ही मिथ्या है, जब आज अन्य जातिके पुरुषोंकी लज्जा जो स्वभावतः अधिक होती है उसके होते नही रुकते तो फिर एकमेक होते लोकलज्जा कम हो जायगी वह कैसे रोकेगी?

(१३) विजाति-विवाह वाले कह सकते हैं कि जो जाति थोड़ी संख्या वाली है उनमें अनमेल विवाह होते हैं और दिन घटती जारही हैं।

पाठकगण ! विजाति-विवाह वालोंने जो दोष ऊपर दिखाये हैं वास्तवमें यदि ये दोष हों तो समाजको बड़े भयंकर हैं परन्तु सबसे यह बात मिथ्या है कि जो जाति थोडी संख्या वाली है, उनमें अनमेलविवाह अर्थात् १३ वर्षकी लडकीको ३५ वर्षका वर मिलता हो। जब भारतवर्षमें लडके लड़की समान रूपसे होते हैं फिर अनमेलविवाह कैसे हो सकता है? यह दोष दिखाना केवल एक प्रकारसे जनताको धोखा देना है। क्योंकि सब जनता-को इन बातोंका ज्ञान कहां है कि कौनसी जाति कमती है, कौनसी लड़कीको वर नहीं मिला सो बैठी ही रही? अथवा वह मिला तो बहुत बड़ा। वे बेचारे सीधे आदमी, जिसने जरा चिल्लाकर अथवा ढीठताके साथ कहा, मानलिया या किसी लोभीकी बात दूसरी है कि उसको योग्य वर मिलते हुए भी "लखपतीको ही ब्याहूं" इस कामनासे योग्य वर न मिला हो। इन बातोंसे तो छोटी २ जाति ही क्या बडी २ खंडेलवाल अग्रवाल जाति भी नहीं बचीं। शायद् लेखकने उनपर ही लक्ष्य देकर तमाम जातियों पर यह दोष लादा हो, जोकि आयोग्य है।

अब रहा संख्याकी घटीका दोष? सो यह बात इतनी झूठी और माया भरी है जिसका पार नहीं। विजाति-विवाहसे संख्या किस तरह बढ़ेगी? एक कन्या जो अपनी जातिमें न ब्याही जा-कर अन्य जातिमें विवाही जायगी, वहां क्या एक पुत्रके स्थान चार पुत्र पैदा करने लगेगी, जो संख्या बढ़ादेगी? या किसी नये साइंस ज्ञाताने यह सिद्धान्त निकाला है कि समान जातिके वर

कन्यासे विजाति कन्या वरके योगमें सन्तान अधिक होगी ? यदि यह बात नहीं है तो फिर हम नहीं समझ सकते कि विजाति-विवाहसे संख्या कैसे बढ़ेगी ? यह बात भी ठीक ऊपरके अनुसार है कि भोली समाज किसी प्रलोभनमें पड़कर विजातिविवाहके पोषकोंकी हां में हां मिलादे और उनका अभीष्ट सिद्ध होजाय अर्थात् विजातिविवाह चालू होजाय।

दूसरी बात यह भी है कि विजातिविवाहवाले और विधवा-विवाह वाले हैं सब एक ही थैलीके चट्टा बट्टा, सो उन्हें जिस-प्रकार विधवा विवाह करके संख्यावृद्धिकी सूझती है, वही सूझ विजातिविवाहसे सूझी होगी, जैसे किसी पुरुषका मामा काला था सो उसने यह सिद्धान्त कर लिया कि "काले काले मेरे बापके साले" बस यही लोकोक्ति यहां चरितार्थ होती है कि विधवा-विवाहसे तो जो विधवा नई सन्तानरूप फल नहीं देती, उनका विवाह कर उनसे संख्यावृद्धि कराई जावे। परन्तु यहां संख्या-वृद्धि विजातिविवाहसे कैसे होगी ? लेकिन बात यह है कि मुख जिसका हो वह चाहे जो कह सकता है "मुखमस्तीति वक्तव्ये दशहस्ता हरीतकि" यानी मुख हमारा है और हम कहते हैं कि हर्र दश हाथकी लम्बी होती है। ठीक यही बात विजाति विवाहसे संख्या-वृद्धिकी है; जो असंभव है, वह भी धोखा देनेको कही जा रही है। पाठकगण ! विचार कियाजाय तो विजातिविवाहसे उलटी संख्याकी हानि होगी, क्योंकि जब सब ही मनुष्य अपनी कन्याओंको लखपतीके यहां ब्याहना चाहते हैं तो जबतक लख-

पती कुड्ढा मिलेगा तबतक वह क्यों गरीब तरुण मनुष्यको व्याहेंगे?

इसप्रकार जब सजातीय विवाह चालू है तो अपनी जातिके गरीब तरुण पुरुषको भी व्याहनी पड़ेगी और पटती ही है परन्तु सुधारकोंका तो यह भी एक गुप्त सिद्धान्त है कि जब विजाति-विवाहसे वृद्धविवाह होंगे और फिर भी विधवाओंकी अधिकता होगी, जो जातीय बल है वह नष्ट होजायगा, फिर कहेंगे कि करो विधवाविवाह!

इस कारण फिर यह रोग समाजसे रुकनेवाला नहीं रहेगा यही उनका मन्तव्य है। अतः कहा जाता है कि, यह विजाति-विवाह क्या है मानों विधवाविवाहकी खुफिया पुलिस है"।

(१४) विजाति विवाह वाले इस बातको जोरसे कहा करते हैं कि संसारमें जीनेके लिये दूसरोंके साथ अपनेमें एकताकी अधिक आवश्यकता है। इसीलिये गोरे कालोंको हड़पना चाहते हैं, हिन्दू मुसलमान लड़ते हैं; दिगम्बरी श्वेताम्बरी लड़ते हैं। यदि यह भेद न हो तो कभी लड़ाई ही न हो।

पाठक वर्ग! विचार करिये, किस प्रकार आंखोंमें धूल झोंकी जा रही है और अपना सिद्धांत पुष्ट किया जा रहा है। हम तो इसका उत्तर पूर्व ही लिख चुके हैं कि यह विजातिविवाह ही स्वराज्य प्रलोभनके भावसे बताया जा रहा है। अस्तु। अब हम पाठकोंको इसका तथ्य बताना चाहते हैं कि विजातिविवाहसे यह बात त्रिकालमें भी सम्भव नहीं है कि युद्ध बन्द होजावे। जब

एक ही बावाकी सन्तान कौरव और पांडव अपना सर्वस्व स्वाहा करके और अपने साथ लाखों राजाओंको स्वाहा करके भी युद्ध बन्द कर सके।

६ ,ज एक धर्मके तथा यों कहिये कि मामा फूफाके सम्बन्धी भाई इङ्गलेण्ड जर्मनी भी युद्ध बन्द न कर सके और अनेकों स्थानो पर परस्पर मुसलमान मुसलमानोंसे लड़ रहे हैं, और हिन्दू हिन्दुओंसे लड़ रहे हैं, जिन्हें सब देख रहे हैं, फिर नहीं मालूम संसारमें जीनेके लिये विजातिविवाहसे कौनसी जातिकी पलटन बनाई जायगी जो संसारमें जी सकेगी? अन्यथा बिना इस फौजके मरण हो जायगा या कोई धर्मका कार्य इससे बिगड़ गया है?

शिखरजीके मुकद्दमेमें सब ही खण्डेलवाल अग्रवाल पद्मावतीपुरवाल आदिकोंने भेदभाव न रखकर सहायता दी है। महासभामें भी इससे कोई हानि नहीं पड़ती। मुसलमानोंसे दङ्गा होने पर सब ही हिन्दू अपने भेदोंको भूलकर उनसे मुकाबिला करते हैं। क्या जबतक हिन्दू, मुसलमान, अङ्गरेज, हिन्दुस्थानी, दिगम्बरी, श्वेताम्बरी आदि भेद रहेंगे तबतक एकताका ध्यान रहेगा? तो यह ढकी हुई बात क्यों कही जा रही है कि जैनियोंकी ही ८४ जातियोंमें परस्पर विवाह कियाजाय, किन्तु साफ खुले शब्दोंमें क्यों नहीं कह दिया जाता कि "मनुष्य जाति सब एक है चाहे जो मनुष्य चाहे जिस स्त्रीसे विवाह करले" अन्तरंगका भाव बिना स्पष्ट किये काम नहीं चल सकता। अतः साफ कहदेना चाहिये, परन्तु कह यों नहीं सकते कि एक साथ यों कह दे तो जो कुछ

धीरे २ होनेवाला मटियामेट है वह भी न हो। ये तो यारोंकी उस्तादियां हैं जो काम करना चाहते हैं वह जिस तरह बने उसीकी तालपट्टी दिया करते हैं।

आज तो जैनियोंका जातिभेद मिटाया जाता है कल वैसा होनेपर हिन्दू भेद मिटाया जायगा, परसों हिन्दू मुसलमान भेद. अतरसों अङ्गरेजी हिन्दुस्थानी भेद, क्योंकि "मनुष्य जाति एक ही है" यह सिद्धान्त है ही। और दूसरोंके साथ जीवनको संबन्धी आवश्यकता है ही। क्या ये दोनों सिद्धान्त कहीं भाग जांयगे ?

(१५) विजातिविवाहके पोपक कहते हैं कि जब व्यापार केलिये वर्तमानमें कलकत्ता वम्बई रह जाना पड़ता है, यदि विवाह किसी जातिका किसी जातिवालेके साथ होनेलगे तो कलकत्ता वम्बईमें ही विवाह कर लिया करेंगे। पाठक वर्ग ! विजातिविवाह-वालोंकी क्या अच्छी युक्ति है, यदि विजाति विवाह करने पर भी जब योग्य कन्या न मिलेगी तब उनको देश जाना पड़ेगा अथवा जयपुरमें जहां दश हजार जैनियोंकी गणना है वहां वाले भी अन्य देशवालोंसे विवाह सम्बन्ध करते हैं तो ये सिद्धान्त कैसे हो सकता है कि कोई दूर देशमें व्यापार करने लगे तो विवाह भी वह वहीं करले। आज भी लोग ऐसे २ स्थानों पर व्यापार करते हैं कि जहां दूसरा कोई भी जैनी वहां नहीं रहता, तो अब उनको ऐसे स्थानोंमें व्यापार नहीं करना चाहिये जहां वहुतसे जैनी न रहते हों, या विवाह करना ही छोड़ देना चाहिये क्योंकि विवाहके

लिये देश आना पड़ेगा, न विवाह होगा न देश आना पड़ेगा।

पाठक वर्ग! ये सब बातें दिखावटी हैं, अंतरंगमें यही भाव है कि कोई जाति पांति न रहे और पूर्ण स्वेच्छाचारीसे चाहे जिसके साथ विवाह होने लगे; परन्तु ऐसा कहते अभी हिचकिचाते हैं। अभी तो परीक्षार्थ एक जैनियोंका ही परस्पर जातिभेद मेंटा जाय ऐसा कहते हैं। कहीं यारोंकी चलगई तो देखना फिर प्रत्यक्षमें भी स्पष्ट कहते हैं या नहीं।

(१६) विजातिविवाहके पक्षी कहते हैं कि किसी समय असाटी जातिने किसीके उपदेशसे जैनधर्म धारण कर लिया परन्तु जब उन्होंने देखा कि विवाहादि किससे करें तो फिर वे जैनधर्मको छोड पहले जैसे (अजैन) बन गये।

पाठक वर्ग! ये सब बातें झूठी और धोखे भरी हैं। आप देखें कि जब असाटी जातिने जैनधर्म आत्माके कल्याण करनेको धारण किया तो वे कष्ट सहकर अपने सजातीय असाटियोंसे सम्बन्ध रखते। यदि ऐसा नहीं भी हो सकता था तो जितने भी असाटी जैन हुए थे वे केवल ऐसे ही तो नहीं थे जिनके कन्या ही कन्या हों या पुत्र ही पुत्र। फिर क्या सम्बन्ध परस्पर नहीं रख सकते थे? तो फिर इन झूठी बातोंसे या निरर्थक बातोंसे क्या विजाति-विवाह योग्य हो सकता है? परन्तु आजकल तो यह सिद्धान्त हो रहा है कि खूब बके जाओ कोई न कोई भोला पक्षी तो फंस ही जायगा या भोली समाज इतनी तो कह ही देगी कि ये इतनी बातें कहते हैं सो क्या सब झूठी हैं। बस, इतना

हो गया सो क्या थोड़ा है ? यहां कोई यह आशङ्का करे कि मुसलमानोंके राज्यमें तलवारके जोरसे जो मनुष्य इच्छा न रखते भी मुसलमान वनगये उनकी सन्तान आज कैसे पक्के मुसलमान वन रहे हैं, इसीप्रकार यदि असाटी जाति जैन वन जाती तो उसकी सन्तान कैसी अच्छी वनती ?

तो इसका यही उत्तर है कि वलसे या धनसे जैनी वनाया जाय और उसे अपनी कन्या दीजाय। कहिये पाठक ! क्या अच्छा उपाय जैन संख्या-वृद्धिका सोचा गया है परन्तु प्रश्न करनाको यह स्मरण रहे कि मुसलमानोंने भी जिनको मुसल्मान (नया) वनाया उनको अपनी कन्या नहीं दी, किन्तु उन नये मुसलमानोंमें ही परस्पर संवंध कराया। आज इसी कारणसे वह मुसलमान शुद्धि द्वारा हिन्दू वनाये जा रहे हैं। किन्तु हमारे सुधारक उन्हें अपनी कन्याऐं दिवाकर संख्या-वृद्धिका स्वप्न देख रहे हैं। क्या यह आकाशके पुष्पकी सुगंधि लेना नहीं है ? क्या वे कन्याऐं उन्हींके निकट जाकर सन्तानें उत्पन्न करेंगी, अपनी जातिके निकट नहीं ? धिक्कार है ऐसी वुद्धिको !

(१७) विजाति विवाह वाले कहते हैं कि ऐसे समयमे हम जैनधर्मकी उन्नति क्यों न करें जव कि ईसाई लोग अपने हजारों रुपये खर्च करके अपने धर्मको वढा रहे हैं। पाठक वर्ग ! देखी, आपने इन लोगोंकी अंट संट युक्ति ! ईसाई लोग तो रुपये देदेकर भगी चमारोंको ईसाई वनाते हैं, संख्या-वृद्धि करते हैं; किन्तु विजातिविवाहसे तो किसी भी प्रकार संख्या-वृद्धि नहीं होती,

फिर यह कौनसा नया आविष्कार निकाला गया? ईसाइयोंका दृष्टान्त किस बात पर दिया गया कि ये आजकल रुपये लुटाकर धर्म बढाते हैं, तो हम जैन-संख्या बढानेको विजातिविवाह ही करें!! इससे तो संख्या बढेगी नहीं।

(१८) विजातिविवाह वाले कहते हैं कि जैनधर्मसे, अन्य मनुष्योंके साथ भी भरत महाराजने म्लेच्छ कन्या विवाह कर विजातिविवाह सिद्ध कर दिया है। परन्तु वर्तमानमें विधर्मियों-से विवाह करनेमें उलटी धर्म-हानि है, जैसा कि अग्रवालोंमे वैष्ण-वोंसे विवाह होता है तो उन अग्रवालोंमें हानि होती है। और अग्रवालोंकी इस रूढिको देखकर खेद होता है कि वैष्णवोंसे संब-न्ध करते हैं। पाठक वर्ग! आप लोगोंकी युक्ति देखिये; यदि सब-से बढ़कर कोई प्रमाण मिलता है तो भरत महाराजका, परन्तु भर-तजीका कार्य एक चक्रवर्त्तित्व पदमें नियोग रूप था। यदि ऐसे ही दृष्टान्तोंसे विजातिविवाहकी आज्ञा शास्त्रीय बताई जायगी तो मोक्षगामी युधिष्ठिरादिकोंका दृष्टान्त दे द्यूत-कर्म भी सिद्ध किया जायगा। जब शास्त्रोंमें विजाति पत्नीको भोग पत्नी माना है और उसे किसी देवपूजादि धर्मकार्यमें शामिल न करनेकी आज्ञा है तथा उसकी सन्तान उत्तराधिकारी भी नहीं हो सकती। फिर क्यों विजातिविवाह सिद्ध किया जाता है? विजातिविवाह वाले मनमें खोटा भाव रखकर जो समाजको अपने आप करुणाके समुद्र दिखानेकी चेष्टा करते हैं और अग्रवालोंके इस योग्य कार्यको भी अयोग्य बताते हैं। जो अग्रवाल जातिको हानि न करके अपनी

ही जातिवालोंसे विवाह सम्बन्ध करते हैं दूसरी जाति खंडेल-वालोंसे नहीं करते। इस योग्य कार्यकी प्रशंसा न कर उनपर यह दोष और लादा जाता है कि अग्रवालोंकी संतान धर्म-भ्रष्ट हो जाती है। भला वैष्णवोंके साथ सम्बन्ध करनेसे उनकी संतान भ्रष्ट हो जाती तो आज लाखोंकी तादादमें जैन अग्रवाल न दीखते। जिस प्रकार जैन अग्रवालोंकी कन्या वैष्णव अग्रवालोंके घर जाकर वैष्णवधर्म पालती हैं उसी प्रकार वैष्णव अग्रवालोंकी कन्याएं जैनो अग्रवालोंके घर आकर जैनधर्म पालती हैं। यदि वह व्यवस्था न होती तो सब जैन अग्रवाल वैष्णवोंके साथ संबन्ध करनेसे वैष्णव हो जाते। यदि यहा हम पूछने लगें कि वैष्णव अग्रवाल भी जब जैन अग्रवालोंके साथ सम्बन्ध करते हैं तो वे अब तक कैसे वैष्णव रह सके. आप इसका क्या उत्तर देंगे? पक्ष समान हैं जो उत्तर हमने दिया वही आपका होगा।

यहा कोई यह शङ्का करे कि भरत महाराजका या अन्य सब चक्रवर्तियोंका तो ये नियोगरूप कार्य है जो म्लेच्छ खंडोंके राजाओंकी कन्या विवाहते हैं, परन्तु महाराज श्रेणिकने ब्राह्मण कन्यासे ब्याह किया और उनके पुत्र अभयकुमार मोक्षको गये। और वैश्य पुत्र प्रीतिंकरके छत्तीस स्त्रियां तो वैश्योंकी थी और एक राजकुमारी वसुंधरा थी और उसके पुत्र प्रियंकरको सारा उत्तराधिकार मिला और कुवेरप्रिय सेठकी कन्या राजकुमारको दी गई, इत्यादि प्रमाण अनेकों मिलते हैं जिनसे विजाति-विवाह सिद्ध होता है। तो अब कैसे मानाजाय कि सजातिविवाह ही

आगमानुकूल है? इसका ऐसे उत्तर है कि शास्त्रोंमें विधान उसी कुलका है। जैसे इक्ष्वाकुकुल वालोंका' अपने गोत्रको छोड़कर विवाह इक्ष्वाकुकुलके दूसरे गोत्रमें होगा। खंडेलवालोंके निज गोत्रको छोड़कर दूसरे गोत्रमें विवाह होता है। जैसे अग्रवालोंमे गर्ग गोत्रवालेका मित्तल गोत्र वालोंके साथ होना है, ठीक; यही विधान है और ऐसा ही होनेसे कुल और गोत्र शुद्ध रह सकते हैं और दीक्षाका वही अधिकारी हो सकता है।

हम यह भी कह चुके हैं कि एक जाति (वंश) वालोका एक ही व्यापार हो जिससे एक ही वर्ण रहा हो यह असंभव है, दृष्टान्त के लिये देखलीजिये कि पद्मावतीपुरवालोंमें प्रायः वैश्य वर्णकी व्यापारवृत्ति है परन्तु अब बहुतसे पंडित होगये और विद्यासे आजीविका करने लगे, पठनपाठन-कर्म होगया और ब्राह्मण कर्मका व्यापार होगया और आश्चर्य ही क्या कि दो चार पीढ़ी ऐसा ही हो और इन्हें लोग ब्राह्मण मानने लगें। परन्तु इनका सम्बन्ध तो इनकी जातिमें ही होगा, ठीक यही बात श्रेणिकजीके विषयमें है। कोई उन्हीका सजातीय बाह्मर्ण-कर्म करने वाला होगा उसकी कन्यासे सम्बन्ध हुवा और उनके पुत्र अभयकुमारजी मोक्ष गये। यदि ऐसा न होता तो भिन्न जातिकी सन्तान जाति-संकर होती है और वह दानके पूर्ण फलको नहीं पा सकती तो मोक्ष प्राप्ति तो अत्यन्त दूर है। हम एक और भी दृष्टान्त देते हैं कि अग्रवाल जातिमें उत्पन्न हुए रायबहादुर मेजर घमंडीलालजीके विवाहादि उनकी जाति अग्रवालमें हुए। आज उनका इतिहास लिखने वाला

लिखदे कि मेजर घमंडोलालजी की कन्याका विवाह वैश्यके साथ हुवा तो जो मेजर शब्दसे एक क्षत्रिय वर्णके व्यापारसे, क्षत्रियसे जचते हैं, तो आगामी इसका अर्थ क्या होगा ?

अव जानना चाहिये कि प्रीतिकर वैश्य थे परन्तु जिस राजकुमारीके साथ सम्बन्ध हुवा वह उन्हीके समान कुल राजाकी कन्या होगी, अन्यथा उसकी सन्तान कैसे उत्तराधिकारी होती ?' वैश्य कन्याओंकी संतानें भी तो उत्तराधिकारी हुई होंगी। दूसरी वात यह हैं कि शास्त्रोंमें राजा महाराजाओंकी कथाऐं ही अधिकतर हैं और राजा महाराजा प्रायः पुण्याधिकारी होते हैं, भोगी होते हैं अत उनका विवाह जो समान जातिमें न हुवा हो उसे भोगपत्नी समझना चाहिये, धर्मपत्नी तो समान जातिहोकी होती है और जहां कहीं कथामें ऐसा आवे कि अमुक राजाके वैश्यकी कन्यासे पुत्र हुआ और मोक्ष गया तो समझना चाहिये कि वे समान जातिके ही थे परन्तु भिन्न २ व्यापारसे भिन्न २ वर्ण वाले कहलाते थे। शास्त्रके प्रमाणसे शास्त्रकी वातको मिलान करना ही बुद्धिमत्ता है। कर्तव्याकर्तव्य शास्त्रके आधारसे ही निर्णय करना चाहिये। किसी मनुष्यने ऐसा किया वैसा किया यह मार्ग ग्राह्य-मार्ग नहीं हो सकता।

विवाह विषयमें समान जातिकी कन्या जो अपने गोत्रसे भिन्न गोत्रकी है वही धर्मपत्नी कहानेकी अधिकारिणी है और उसीकी सन्तान दीक्षा एवं मोक्षकी पात्र है। वस, अव हम इस लेखको पूर्ण करते हैं। विजातिविवाह आगम और युक्ति इन दोनोंसे

अयोग्य है जिसे कि हम ऊपर दिखा चुके हैं। इसलिये आप इन सुधारक एवं अपनेको पंडित समझने वालोंकी थोथी बातोंमें कदापि न आवें। विज्ञेषु किमधिकम्।

श्रीलाल पाटनी अलीगढ़

विजाति विवाह आगम और युक्ति दोनोंसे विरुद्ध है

इस पर प्राप्त हुई सम्मतियां

(विद्वन्मण्डली)
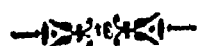
(१) श्री० खंडेलवाल कुलभूषण पं० धन्नालालजी संरक्षक खंडेलवाल महासभा, मुंबई

(२) श्री० धर्मधीर पं० मक्खनलालजी शास्त्री सम्पादक 'जैनगजट' मुरैना

(३) श्री० विद्यावारिधि पं० खूबचन्दजी शास्त्री आगरा

(४) श्री० पं० गौरीलालजी शास्त्री मंत्री विद्या विभाग महासभा दिल्ली

(५) श्री० पं० माणिकचन्दजी न्यायाचार्य प्रधानाध्यापक जम्बूविद्यालय सहारनपुर

(६) श्री० न्यायतीर्थ पं० वंशीधरजी सम्पादक 'स्याद्वाद केसरी'

(७) श्री० धर्मरत्न पं० लालारामजी शास्त्री भूतपूर्व संपादक 'जैनगजट' चावली

(८) श्री० पं० नन्हेलालजी शास्त्री प्रधानाध्यापक महाविद्यालय, ब्यावर

(९) श्री० पं० पन्नालालजी सोनी प्रधानाध्यापक गोपाल जैन सिद्धान्त विद्यालय, मुरैना

(१०) श्री० प० बनारसीदासजी शास्त्री प्रधानाध्यापक जैन पाठशाला, अजमेर

(११) श्री० उदासीन पं० पन्नालालजी गोधा, इन्दौर

(१२) श्री० बाबा ठाकुरदासजी वर्णी, मुरैना

(१३) ब्रह्मचारी प० नन्दनलालजी शास्त्री (ब्र० ज्ञानचन्दजी)

(१४) श्री० पं० नाथूलालजी कटारिया काव्यरत्न, मुरैना

(१५) श्री० धर्मरत्न प० रघुनाथदासजी भूतपूर्व सम्पादक 'जैनगजट' सरनौ

(१६) श्री० पं० अजितकुमारजी शा० भू० पू० सम्पादक जैनगजट मुलतान

(१७) श्री० न्यायतीर्थ प० शान्तिराजीया प्रधानाध्यापक ना० प्रा० दि० जैन खंडेलवाल विद्यालय, नागपुर

(१८) श्री० न्यायतीर्थ पं० श्रीनिवासजी धर्माध्यापक महाविद्यालय ब्यावर

(१९) श्री० न्यायतीर्थ पं० पल्टूरामजी 'वत्सल' सिवनी

(२०) श्री० न्यायतीर्थ पं० परमानन्दजी, ब्यावर

(२१) श्री० पं० नानूलालजी शास्त्री जयपुर

(२२) श्री पं० इन्द्रलालजी शास्त्री संपादक "खंडेलवाल जैन-

हितेच्छु" तथा मंत्री भारतवर्षीय दि० जैन शस्त्रि परिषद्

(२३) श्री० पं० जवाहरलालजी, शास्त्री जयपुर

(२४) श्री० पं० भगवानदासजी प्रधानाध्यापक महाविद्यालय ब्यावर

(२५) पं० श्रीलालजी काव्यतीर्थ सम्पादक 'विनोद' व पद्मावती पुरवाल, कलकत्ता

(२६) ज्योतिषरत्न आयुर्वेदमार्तण्ड पं० जीयालालजी, रईस फरूखनगर

(२७) श्री० पं० पारसदासजी काव्यतीर्थ अध्यापक हीरालाल जैन हाईस्कूल, दिल्ली

[२८] श्री० पं० जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले अध्यापक ऐ० पन्नालाल पाठशाला, शोलापुर

[२९] हकीम कल्याणरायजी भू० पू० उपदेशक महासभा अलीगढ़

[३०] श्री० पं० कस्तूरचन्दजी उपदेशक बड़नगर (मालवा)

[३१] श्री० पं० अमोलकचन्दजी सहायक महामंत्री महासभा, इन्दौर

[३२] श्री० व्याकरण भूषण पं० कमलकुमारजी शास्त्री अलीगढ़

[३३] श्री० पं० भूरामलजी राणोली (सीकर)

[३४] श्री० पं० शिवजीरामजी अध्यापक जैन पाठशाला, रांची

[३५] श्री० पं० मंगलसैनजी अध्यापक जैन पाठशाला, अम्बाला

[३६] श्री० पं० मुंशीलालजी [सुपुत्र स्व० न्यायादिवाकर पं० पन्नालालजी फीरोजाबाद]

[३७] श्री० पं० सागरचन्द्जी शास्त्रवक्ता, दिल्ली

[३८] श्री० पं० गणेशीलालजी अध्यापक जैन पाठशाला, सीकर

[३६] श्री० '० इन्द्रमणिजी वैद्यशास्त्री प्र० अध्यापक कुन्दन-जैन पाठशाला अलीगढ़

[४०] श्री० पं० सोनपालजी उपदेशक महासभा अलीगढ़

[४१] श्री० पं० सुमतिचन्द्जी उपदेशक महासभा

[४२] श्री० प० कस्तूरचन्द्जी साह जयपुर।

(श्रेष्ठिवर्ग)

[१] श्री० दा० रा० रा० सर सेठ हुकमचन्द्जी, इन्दौर

[२] श्री० रायवहादुर धर्मवीर सेठ टीकमचन्द्जी, अजमेर

[श्री०] श्री० कुंवर भागचन्द्जी सोनी [सुपुत्र सेठ टीकमचन्द्जी अजमेर)

[४] श्री० ला० प्रद्युम्नकुमारजी [सुपुत्र ला० जम्बूप्रसाद्जी सहारनपुर]

[५] श्री० रा० श्रीमन्त सेठ पूरनसाहजी, सिवनी

[६] श्री० सेठ मोतीलालजी गुलावसावजी नागपुर सभापति महासभा

[७] श्री० कुंवर विरधीचन्द्जी सुपुत्र सेठ पूरनसाहजी, सिवनी

[८] श्री रायसाहव मोतीलालजी, व्यावर सभापति महासभा

[६] श्री० सेठ गोपालदासजी [पौत्र राजा सेठ लक्ष्मणदास-जी] मथुरा

[१०] श्री० दानवीर सेठ हुकमचन्दजी, मुंबई
[११] श्री० सेठ गम्भीरमलजी सभापति महासभा, कलकत्ता
[१२] श्री ला० गुलाबरायजी सहारनपुर
[१३] श्री० सेठ सुखचन्दजी शिवरामजी गांधी मुंबई
[१४] श्री० सेठ शान्तिलालजी आ० मजिस्ट्रेट (सुपुत्र सेठ मेघारामजी) गुरजा
[१५] श्री० धर्मवीर सेठ रावजी सखारामजी दोशी शोलापुर
[१६] श्री० सेठ दीवान पुत्तूलालजी, सीकर स्टेट
[१७] श्री० सेठ बालचन्दजी (सेठ फतेचन्दजी कुशलाजी)
[१८] श्री० सेठ बापूलालजी चौधरी, इन्दौर
[१९] श्री० सेठ हीरालालजी पाटनी, इन्दौर
[२०] श्री० सेठ विरधीचन्दजी, कलकत्ता
[२१] श्री० लाला फूलचन्दजी आ० मजिस्ट्रेट व गवर्नमेंट ट्रेजरर अलीगढ
[२२] श्री० सेठ रोडमलजी मेघराजजी सुसारी
[२३] श्री० सेठ कुमरसेनजी भूतपूर्व मंत्री परवार सभा सिवनी
[२४] श्री० सेठ सरवसुखजी खजांची, जयपुर
[२५] श्री० ला० तिलोकचन्दजी (सोहनलालजी तिलोकचन्दजी) दिल्ली
[२६] श्री० सेठ कन्हैयालालजी गंगवाल, लश्कर
[२७] श्री० सेठ चैनसुखजी छावडा आ० मजिस्ट्रेट व महामंत्री महासभा सिवनी

[२८] श्री० बाबू माणिकचन्दजी बैनाडा महामंत्री खं० महासभा मंबई

[२९] श्री० सेठ लादूलालजी उप सभापति ना० प्रा० खं० सभा नागपुर

[३०] श्री० डाक्टर गुलाबचन्दजी पाटनी आ० मजिष्ट्रेट भू० पू० सम्पादक खंडेलवाल जैन हितेच्छु, अजमेर

[३१] श्री०ला० मिश्रीलालजी सौगानी उपमंत्री उपदेशक विभाग महासभा

[३२] श्री० ला० मोहरीलालजी भूत पूर्व सम्पादक खं० जैन-हितेच्छु, अजमेर

[३३] श्री लाला वासुदेवसहायजी रईस, टूंडला

[३४] श्री० लाल बाबूलालजी रईस, वीरपुर

[३५] श्री० सेठ निर्भयरामजी, दिल्ली

[३६] श्री० ला० परशादीलालजी पाटनी, दिल्ली

[३७] श्री० सेठ प्रभूलालजी सभापति खण्डेलवाल महासभा कलकत्ता

धर्मवीर धनाढ्योंसे निवेदन

—००ः०ः००—

आजकलकी वायुको देखते हुये अत्यन्त आवश्यकता है कि ऐसे ऐसे धर्मरक्षक निबंध लिखाये जाकर प्रकाशित कराये जांय। निबंधोंका लिखना और लिखाना धर्मरक्षक विद्वानोंका काम है, अतएव भारतवर्षीय दि० जैन शास्त्रि परिषद्‌ने इस महान् कार्यको आवश्यक और धर्मरक्षामें प्रधान समझा है परन्तु निबंधोंका प्रकाशन कार्य द्रव्यके विना नहीं हो सकता अतएव धनाढ्य महोदयोंसे निवेदन है कि इस कार्यमें खूब सहायता देकर समाजके धर्मधनको बचावें। यदि एक एक ट्रेक्टका भार एक एक धनवान् भी लेले तो कई ट्रेक्ट निकल सकते हैं इसलिये धर्मवीर धनाढ्य महोदयोंको इस तरफ अवश्य ध्यान देनाही चाहिये।

विधवाविवाह खंडन, अजैनको जैन बनानेकी विधि, स्पृश्यास्पृश्यविचार आदि कई विषयों पर लिखे हुये निबंधोंके छपनेकी खास ज़रूरत है। जो महाशय एक निबंधका पूरा खर्चा देना स्वीकार करेंगे उनका फोटो भी प्रकाशित कर दिया जायगा और इसी प्रकार लेखक महोदयका फोटो भी देदिया जायगा। आशा है कि धनाढ्य जन हमारी इस आवश्यक विज्ञप्ति पर ध्यान देकर धर्म वृद्धि, धनका सदुपयोग और कीर्ति आदि अनेक लाभ स्वीकृत करेंगे।

इन्द्रलाल शास्त्री
मंत्री भारत दि० जैन शास्त्रि परिषद्
कार्यालय— जयपुर

"जैन-सिद्धांत"

यह भारतवर्षीय दि० जैनशास्त्रि परिषद्का मासिक मुखपत्र हैं, जिसके संपादक समाजप्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् स्याद्वादवाच-स्पति विद्यावारिधि पं० ख्बूचन्द्जी शास्त्री हैं।

जैनसिद्धांतमें उच्चकोटिके धार्मिक और सामाजिक लेख रहते हैं। इसका उद्देश्य आर्षमार्गानुसार जैनधर्म और जैन-समाजकी वास्तविक उन्नति करना है। प्रत्येक धर्मवन्धुको इसका ग्राहक होना अत्यावश्यकीय है। जो भाई इसके ग्राहक हैं उनसे यह निवेदन है कि वे दूसरे भाइयोको ग्राहक वनानेकी प्रेरणा करें।

पत्रका वार्षिक मूल्य दो रुपया है।

पत्र व्यवहारका पता—

मैनेजर "जैनसिद्धांत" श्रीधरप्रेस शोलापुर।

मुद्रक—श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ

जैनसिद्धान्तप्रकाशक (पवित्र) प्रेस

९ विश्वकोष लेन, पो० बाघबाजार—कलकत्ता